

जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2533



श्री सिद्धकूट चैत्यालय
सोनी जी की नशिवाँ,
अजमेर में विराजमान अतिप्राचीन भव्य जिनप्रतिमा

वैशाख, वि.सं. 2064

अप्रैल, 2007



आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

1
बिन तन बिन मन वचन बिन, बिना करण बिन वर्ण ।
गुणगण गुम्फन घन नमूँ, शिवगण को बिन स्वर्ण ॥

2
पाणि-पात्र के पाद में, पल-पल हो प्रणिपात ।
पाप खपा, पा, पार को, पावन पाऊँ प्रान्त ॥

3
शत-शत सुर-नर पति करें, वंदन शत-शत बार ।
जिन बनने जिन-चरण रज, लूँ मैं शिर पर सार ॥

4
सुर-नर यति-पति पूजते, सुध-बुध सभी बिसार ।
गुरु गौतम गणधर नमूँ, उमंग से उर धार ॥

5
नमूँ भारती तारती, उतारती उस तीर ।
सुधी उतारें आरती, हरती खलती पीर ॥

6
तरणि ज्ञानसागर गुरो! तारो मुझे ऋषीश ।
करुणाकर करुणा करो, कर से दो आशीष ॥

7
कौरव रव-रव में गये, पाण्डव क्यों शिव-धाम ।
स्वार्थ तथा परमार्थ का, और कौन परिणाम?

8
पारस-मणि के परस से, लोह हेम बन जाय ।
पारस के तो दरस से, मोह क्षेम बन जाय ॥

9
एक साथ लो! बैल दो, मिल कर खाते घास ।
लोकतन्त्र पा क्यों लड़ो? क्यों आपस में त्रास? ॥

10
दिखा रोशनी रोष ना, शत्रु मित्र बन जाय ।
भावों का बस खेल है, शूल फूल बन जाय ॥

11
उच्च-कुलों में जनम ले, नदी निम्नगा होय ।
शान्ति, पतित को भी मिले, भाव बड़ों का होय ॥

12
सूर्योदय से मात्र ना, ऊष्मा मिले प्रकाश ।
सूर-दास तक को मिले, दिशा-बोध अविनाश ॥

13
मानव का कल-कल नहीं, कल-कल नदी निनाद ।
पंछी का कलरव रुचे, मानव! तज उन्माद ॥

14
भू पर निगले नीर में, ना मेंढक को नाग ।
निज में रह बाहर गया, कर्म दबाते जाग ॥

15
कब तक कितना पूछना, चलते चल अविराम ।
रुको रुको यूँ सफलता, आप कहे यह धाम ॥

16
जिनवर आँखें अध-खुलीं, जिनमें झलके लोक ।
आप दिखे सब, देख ना!, स्वस्थ रहे उपयोग ॥

17
ऊधम से तो दम मिटे, उद्यम से दम आय ।
बनो दमी हो आदमी, कदम-कदम जम जाय ॥

18
दोषरहित आचरण से, चरण पूज्य बन जाय ।
चरण धूल तक शिर चढ़े, मरण पूज्य बन जाय ॥

‘पूर्वोदयशतक’ से साभार

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक 5,00,000 रु.
परम संरक्षक 51,000 रु.
संरक्षक 5,000 रु.
आजीवन 500 रु.
वार्षिक 100 रु.
एक प्रति 10 रु.
सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

- | | पृष्ठ |
|---|-------------------------------------|
| ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे | आ.पृ. 2 |
| ◆ वस्तुतत्त्व समझने के लिए अध्यात्मयात्रा जरूरी | |
| : उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी | आ.पृ. 3 |
| ◆ स्तवन | |
| : मुनि श्री योगसागर जी | आ.पृ. 4 |
| ● श्री नेमिनाथ-स्तवन | |
| ● श्री पार्श्वनाथ-स्तुति | |
| ◆ सम्पादकीय : 'ऐलक' नहीं, 'एलक' लिखें | 2 |
| ◆ लेख | |
| ● किशनगढ़ के गौरव | : मूलचन्द्र लुहाड़िया 4 |
| ● व्यवहार रत्नत्रय | : स्व. पं. लालबहादुर जी शास्त्री 6 |
| ● मिथ्यात्वनिवारक धर्ममूर्ति 'चारित्रचक्रवर्ती' | |
| : डॉ. राजेन्द्रकुमार वंसल | 9 |
| ● दिगम्बर-परम्परा को बनाये रखने का दायित्व | |
| किस पर | : पं. वसन्तकुमार जैन शास्त्री 12 |
| ● कुण्डलपुर के बड़े बाबा पर उपसर्ग | : ब्र. अमरचन्द्र जैन 13 |
| ● कुण्डलपुर में दिगम्बर जैन साधु | : मनैला अन्ने-मारिया पोप 14 |
| ● पाखण्ड को प्रणाम कब तक ? | : स्वामी अग्निवेश 18 |
| ● जैन महिलाओं का चतुर्मुखी विकास | : विमला जैन 20 |
| ● अक्षयतृतीया पर्व | : सुशीला पाटनी 23 |
| ● सीखो अध्यात्म की गिनती | : सुगन्धी चौधरी 24 |
| ◆ जिज्ञासा-समाधान | : पं. रतनलाल बैनाड़ा 25 |
| ◆ बालवार्ता : दान 'अहं' का | : डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' 28 |
| ◆ मुक्तक-मणियाँ | : डॉ. विमला जैन 'विमल' 22 |
| ◆ आपके पत्र | 30 |
| ◆ समाचार | 32 |

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

‘ऐलक’ नहीं, ‘एलक’ लिखें

प्रायः देखा जाता है कि हम बोलते ‘एलक’ हैं, लेकिन लिखते ‘ऐलक’ (अइलक) हैं। यह ठीक नहीं है। शुद्ध शब्द ‘एलक’ ही है, जैसा कि उच्चरित किया जाता है।

स्व० पण्डित हीरालाल जी जैन सिद्धान्तशास्त्री ने ‘ऐलक’ शब्द को ‘अचेलक’ का प्राकृतरूप माना है। वे कहते हैं कि ‘कगचजतदपयवां प्रायो लुक्’ (हैम प्राकृतशब्दानुशासन ८/१/१७७) इस नियम के अनुसार ‘अचेलक’ के ‘च्’ का लोप हो जाने पर ‘अ’ शेष रहा और ‘अएलक’ इस स्थिति में वृद्धिसन्धि (अ+ए=ऐ) होने पर ‘ऐलक’ पद बन गया। नञ्समास में ‘अ’ (नञ्) से ‘ईषद्’ अर्थ लेने पर ‘ऐलक’ शब्द अल्पवस्त्रधारी (केवल एक कौपीनधारी) उत्कृष्ट (एकादशप्रतिमावलम्बी) श्रावक का अर्थ देता है। (वसुनन्दि-श्रावकाचार/ भारतीय ज्ञानपीठ काशी/१९५२ ई./प्रस्तावना/पृ.६३) क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी जी ने भी ‘जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश’ (भाग १/पृ. ४६८-६९) में पण्डित जी के इस मत का उल्लेख कर इसे मान्यता प्रदान की है।

किन्तु, पण्डित जी का यह मत समीचीन नहीं है। उपर्युक्त नियम के अनुसार ‘च्’ का लोप होने से अवशिष्ट ‘ए’ उद्वृत स्वर है। अतः ‘स्वरस्योद्वृत्ते’ (हैम प्राकृतशब्दानुशासन/८/१/८) सूत्र के अनुसार पूर्ववर्ती ‘अ’ के साथ उसकी सन्धि नहीं हो सकती, जैसे निशाचरः > निसाअरो, रजनीचरः > रयणीअरो। अतः प्राकृत में ‘ऐलक’ शब्द नहीं बन सकता। यदि सन्धि मानी भी जाय, तो भी प्राकृत में ‘ऐ’, ‘औ’ स्वरों का अस्तित्व न होने से ‘ऐलक’ शब्द सिद्ध होना असंभव है। प्राकृत ग्रन्थों में संस्कृत ‘अचेलक’ का ‘अएलक’ या ‘ऐलक’ रूप मिलता भी नहीं है, सर्वत्र ‘च’ ज्यों का त्यों उपलब्ध होता है, यथा- ‘अचेलमण्हाणं’ (प्र.सा./गा.३/८), ‘आचेलकमण्हाणं’ (मूलाचार/गा.३), ‘आचेलक्कुद्देसिय’ (भगवती-आराधना/गा.४२३), ‘अचेलगो य जो धम्मो’ (श्वेताम्बर उत्तराध्ययन-सूत्र/२३/२९)। अतः ‘ऐलक’ शब्द न तो प्राकृतभाषा का शब्द है, न ही संस्कृत का। संस्कृत में ‘एलक’ शब्द उपलब्ध होता है, किन्तु उसका अर्थ एडक (मेढ़ा) है (आप्टेकृत संस्कृत-हिन्दी-कोश)।

इसके अतिरिक्त अल्पचेलक-अर्थ में ‘अचेलक’ शब्द का प्रयोग तो श्वेताम्बर-आगमों में भी नहीं हुआ है, दिगम्बर-आगमों में होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उत्तरवर्ती श्वेताम्बर वृत्तिकारों ने अवश्य मुनियों की सचेलता को आगमोक्त सिद्ध करने के लिए ‘अचेलक’ शब्द को अल्पचेलक-अर्थ में प्रयुक्त बतलाने की चेष्टा की है, किन्तु वह असमीचीन है। यदि दिगम्बरमत में भी ‘अचेलक’ शब्द को ‘अल्पचेलक’ अर्थ का प्रतिपादक माना जाय, तो मुनि के लिए विहित ‘आचेलक्य’ मूलगुण से ‘अल्पचेलत्व’ मूलगुण अर्थ प्रतिपादित होने से कोई तर्क नहीं रोक सकता, जिससे दिगम्बरजैन-मत में भी सवस्त्रमुक्ति की मान्यता का सिद्ध होना अनिवार्य है। अतः ‘अचेलक’ शब्द को अल्पचेलक अर्थ का प्रतिपादक किसी भी तरह नहीं माना जा सकता।

प्राचीन ग्रन्थों में ग्यारहवीं प्रतिमा के क्षुल्लक-ऐलक ये दो भेद भी नहीं मिलते। आचार्य कुन्दकुन्द ने उत्कृष्ट श्रावकों के लिंग को उत्कृष्ट लिंग कहा है, किन्तु क्षुल्लक-ऐलक शब्दों का प्रयोग नहीं किया (सुत्तपाहुड/गा.२१)। स्वामी समन्तभद्र ने भी क्षुल्लक-ऐलक भेद किये बिना ग्यारहवीं-प्रतिमाधारी श्रावक को ‘चेलखण्डधरः’ कहा है और टीकाकार प्रभाचन्द्र ने इसका अर्थ कौपीन (लँगोटी) मात्र धारण करनेवाला किया है तथा उसे ‘आर्य’ शब्द से अभिहित किया है- “चेलखण्डधरः कौपीनमात्रवस्त्रखण्डधारकः आर्यलिङ्गधारीत्यर्थः।” (रत्नकरण्ड-श्रावकाचार/कारिका १४७)। पं० आशाधर जी ने भी उसे ‘आर्य’ कहा है। (सागारधर्माभूत/७/४८)।

सर्वप्रथम ७वीं शती ई० के रविषेणकृत पद्मपुराण (१००/३२-४१) में कौपीन-अंशुकधारी उत्कृष्ट श्रावक के लिए ‘क्षुल्लक’ शब्द का प्रयोग किया गया है। तत्पश्चात् १०वीं शती ई० के हरिषेणकृत ‘बृहत्कथाकोश’ में भी ‘क्षुल्लक’ शब्द व्यवहृत हुआ है। (७३. यशोधर-चन्द्रमती कथानक/श्लोक २३७-२३८)। किन्तु १२वीं शती ई० के आचार्य वसुनन्दी ने अपने श्रावकाचार (गाथा ३०१-३१०) में क्षुल्लक-ऐलक शब्दों का प्रयोग न

कर एकादशप्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावकों के प्रथमोत्कृष्ट और द्वितीयोत्कृष्ट, ये दो भेद किए हैं। सर्वप्रथम १६वीं शती ई० में पं० राजमल्ल जी ने अपनी 'लाटीसंहिता' (६/५५) में द्वितीयोत्कृष्ट श्रावक के लिए 'एलक' शब्द का प्रयोग किया है- "उत्कृष्टः श्रावको द्वेधा क्षुल्लकश्चैलकस्तथा।" इससे यह निर्णय युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि 'चेलखण्डधरः' के साथ लोक में 'खण्डचेलकः' शब्द भी प्रचलित हुआ और प्राकृत के नियमानुसार स्वरमध्यग 'च्' का लोप होने पर 'खण्डएलक' शब्द का विकास हुआ। पश्चात् प्रयत्नलाघव की प्रवृत्तिवश केवल 'एलक' शब्द का प्रयोग होने लगा। संस्कृत में शिव और परशुराम के अर्थ में 'खण्डपरशुः' शब्द उपलब्ध होता है। (आपटेकृत संस्कृत-हिन्दी कोश)। 'खण्डचेलकः' ऐसा ही शब्द है। अथवा 'आर्य' शब्द आर्यक > आरक > एक > एलक इस तरह 'एलक' रूप में विकसित हुआ है। 'एलक' शब्द का 'ऐलक'-रूप में प्रचलन सन्धिविच्छेद करनेवालों की कृपा से हुआ है। 'लाटीसंहिता' में 'एलक' शब्द का प्रयोग केवल तीन स्थानों में सन्धिपूर्वक हुआ है, यथा- 'क्षुल्लकश्चैलकः' (६/५५) 'तत्रैलकः' (६/५६), 'चैलकस्य' (६/५८)। यहाँ तीनों जगह 'च + एलकः', 'तत्र+एलकः', 'च + एलकस्य' इस प्रकार सन्धिविग्रह किया जाना चाहिए, किन्तु 'च + ऐलकः', 'तत्र + ऐलकः' ऐसा विच्छेद कर लिया गया, जो समीचीन नहीं है। उच्चारण भी 'एलक' ही किया जाता है, 'ऐलक' (अइलक) नहीं।

रतनचन्द्र जैन

निर्ग्रन्थ

आचार्य महाराज अपने संघ सहित द्रोणगिरि में विराजे थे। बड़ी मनोरम जगह है। सिद्ध क्षेत्र है। पर्वत पर प्राचीन जिनालय हैं। नीचे तलहटी में व्रती-आश्रम व चौबीसी मंदिर हैं। वर्णीजी ने कभी इसे 'छोटा सम्मेद-शिखर' कहा था। आचार्य महाराज सहित सारा संघ पर्वत पर ही आत्म-साधना में लीन रहता था। आहार-चर्या के लिए नीचे आना और चर्या के उपरान्त वापिस पर्वत पर लौट जाना, रोज का क्रम था। आचार्य महाराज ने यहाँ रहकर प्रतिदिन तपती दुपहरी में तीन-तीन घंटे शिलातल पर सूर्य की प्रखर किरणों के नीचे बैठकर ध्यान किया और सारे संघ को साधना के साथ-साथ अध्यात्म की शिक्षा भी दी।

उन दिनों संघ में आचार्य महाराज के साथ हम सभी एलक-क्षुल्लक ही थे। अभी मुनि-दीक्षा किसी को नहीं मिली थी। एक दिन सुबह अचानक मालूम पड़ा कि एलक श्री समयसागर जी केशलुंचन कर रहे हैं। हम सब सोच में पड़ गए कि बात क्या है? अभी बाल बहुत छोटे हैं, दो माह भी पूरे नहीं हुए। पर अगले ही क्षण हम निश्चिन्त होकर अपने ध्यान-अध्ययन में लग गए और सोचा कि जो भी होगा सामने आएगा। असल में, आचार्य महाराज के साथ यही तो मजा है कि भविष्य में क्या होगा, इस चिन्ता से मुक्त रहकर वर्तमान में जीने की शिक्षा मिलती है। तब जो भी होता है, सुखद होता है।

लगभग नौ बजे अत्यन्त सादगी से, बिना किसी आडम्बर व प्रदर्शन के, आचार्यश्री के द्वारा प्रथम मुनिदीक्षा सम्पन्न हुई। हम सभी ने आचार्य महाराज द्वारा दीक्षित प्रथम निर्ग्रन्थ श्रमण मुनि समयसागर जी की चरण वंदना की और अत्यन्त आत्म-विभोर होकर परस्पर चर्चा में लग गए। इतने में आचार्य महाराज स्वयं आकर हमारे बीच खड़े हो गए और बोले, "क्या बात है? सभी बहुत खुश हो" हमने कहा कि "आज बहुत अच्छा लग रहा है। निर्ग्रन्थ होना अत्यन्त आनन्द की बात है।" वे मुस्करा कर बोले, "आत्म-विकास के लिए यही उत्साह कल्याणकारी है।" हम सभी उनकी इस आश्वस्ति और प्रसाद से आप्लावित हुए।

आज जब कभी वह सब याद आता है, तो सोचता हूँ कि दूसरे जीवों के हित का मुख्यरूप से प्रतिपादन करने वाले, आर्य पुरुषों के द्वारा सेवनीय प्रधान निर्ग्रन्थ आचार्य ऐसे ही होते होंगे। वर्षों पूर्व पूज्यपाद स्वामी के मन में ऐसे ही आचार्य की छवि बनी होगी, तभी तो उन्होंने लिखा होगा-

"परहित-प्रतिपादनैक-कार्यमार्य-निषेव्यं निर्ग्रन्थाचार्यवर्यम्।"

द्रोणगिरि (मार्च, 1980)

मुनि श्री क्षमासागरकृत 'आत्मान्वेषी' से साभार

किशनगढ़ के गौरव

मूलचन्द्र लुहाड़िया

किशनगढ़ प्रवास के गत अर्द्धशताधिक वर्षों में मुझे स्थानीय एक व्यक्ति के आदर्श व्यक्तित्व ने सर्वाधिक प्रभावित किया और आज उनको किशनगढ़ का गौरव घोषित करने में, मैं अपने आपको गौरवान्वित अनुभव करता हूँ। वे व्यक्ति हैं माननीय पं. महेन्द्र कुमार जी पाटनी शास्त्री काव्यतीर्थ। वे व्यक्ति नहीं थे, अपितु जैनागम के प्रतिरूप थे। उन्होंने आगम को केवल पढ़ा या पढ़ाया ही नहीं, बल्कि आगम को जिया था और ऐसा जिया था कि उनका जीवन स्वयं में आगम बन गया था। गृहस्थ अवस्था में वे एक आगमानुकूल चर्यावाले सद्गृहस्थ रहे और यथासमय संन्यास अवस्था धारणकर आगमानुकूल चर्यावाले मुनि रहे।

मेरे किशनगढ़-प्रवास के प्रथम दिन ही चन्द्रप्रभु जिनालय के प्रांगण में सायंकाल पंडित जी के दर्शन हुए। प्रतिदिन सायं पंडित जी नियमित शास्त्र पढ़ते थे। मैं भी शास्त्रसभा में आने लगा। दो तीन दिन स्वाध्याय के समय चर्चा में मैंने कुछ भाग लिया, तो पंडित जी ने कहा कि कुछ समय मैं भी शास्त्र वाचन करूँ। मैंने कहा मैं अल्पज्ञ हूँ, आपके समक्ष मेरा शास्त्रवाचन न उपयुक्त है, न आवश्यक। किंतु पंडित जी नहीं माने और आधा घंटा स्वयं वाचनकर शेष आधा घंटे के लिए मुझे वाचन के लिए बैठा देते थे। यह व्यवहार उनकी महानता, सरलता, निरभिमानता और वात्सल्य का दिग्दर्शन करता है।

किशनगढ़ के निकट ग्राम उंटड़ा में सन् 1916 में जन्मे पं. महेन्द्र कुमार जी ने अजमेर में रहते हुए काव्यतीर्थ तथा शास्त्री की शिक्षा प्राप्त की और कुछ दिनों पश्चात् किशनगढ़ में के. डी. जैन विद्यालय में अध्यापक नियुक्त हुए। अजमेर में ही उनका प्रथम विवाह हुआ था, किंतु पत्नी अधिक दिन साथ नहीं रहीं। उनकी दूसरी विवाहित पत्नी ने दो पुत्र श्री चेतनप्रकाश एवं पदमचंद्र एवं एक पुत्री को जन्म दिया। पुत्री के जन्म के समय ही द्वितीय पत्नी का भी लगभग सन् 1949 में निधन हो गया। उस समय पंडित जी की उम्र मात्र 33 वर्ष थी, जो युवावस्था ही मानी जाती है। पंडित जी चाहते तो एक और विवाह कर सकते थे, किंतु उन्होंने उस घटना के पश्चात् जीवन की धारा संयम की ओर मोड़ दी। सादा एवं सात्त्विक भोजन, सादे वस्त्र, सादा रहन-सहन तथा उच्च विचार, यही उनके जीवन

का स्वरूप बन गया। गृहस्थ अवस्था में भी वे साधु सदृश जीवन जीते थे। दो समय सात्त्विक भोजन। एक सब्जी के साथ रोटी और कभी-कभी तो केवल छाछ और रोटी। दो जोड़ी सादा सूती कपड़े। संभवतः जीवन भर में एक सूती कोट बनवाया और उसी को सँभालकर रखते हुए पहना। ऊन एवं चमड़े के प्रयोग का उन्हें त्याग था पंडित जी वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप एवं भावी आकांक्षाओं का निरोधकर आदर्श परिग्रह-परिमाण व्रत का पालन करते थे। अपनी सीमित आय के अनुरूप सीमित व्यय संयोजितकर परिवार का निर्वाह करते थे। पाप के सदृश ऋण से भी दूरी बनाए रखते थे।

विद्यालय में संस्कृत, अंग्रेजी और धर्म का अध्यापन करते थे। विद्यार्थियों को इन्दौर परीक्षालय की विभिन्न धार्मिक परीक्षाएँ दिलाते थे। सम्पूर्ण दिनचर्या नियमित और समय-प्रबद्ध रहती थी। प्रत्येक कार्य ठीक समय पर करना उनकी आदत बन गया था। वे जीवन का थोड़ा भी समय व्यर्थ नहीं खोते थे। उनके द्वारा शिक्षण प्राप्त उनके शिष्य आज भी उनके अध्यापन, अनुशासन एवं समयनिष्ठता की भारी प्रशंसा करते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त धार्मिक संस्कार वे अपने जीवन की बहुमूल्य सम्पत्ति मानते हैं।

अपने माता-पिता की सेवा के साथ-साथ दोनों पुत्रों के शिक्षण, जीवननिर्माण एवं सत्-संस्कारोपण पर पूरा ध्यान देते थे। परिणामस्वरूप दोनों ही पुत्र आदर्श श्रावक बन गए। अपने ज्येष्ठ पुत्र डॉ. चेतनप्रकाश के रूप में उन्होंने समाज को एक अध्येता साहित्यसेवी विद्वान् प्रदान किया। वस्तुतः डॉ. चेतनप्रकाश पंडित जी की एक सदृश प्रतिकृति है। पंडित जी के जीवन के उद्देश्यों, सादा संयमी जीवन, साहित्य सेवा, धर्मशिक्षण एवं धर्मप्रभावना को डॉ. चेतनप्रकाश ने गुणवृद्धि कर अपने जीवन में अपनाया है। गुणी पिता एवं उनके गुणी पुत्र दोनों किशनगढ़ के गौरव हैं।

पंडित जी ने तत्कालीन पत्रिका 'खंडेलवाल जैन हितेच्छु' का सफल संपादन किया। जिनवाणी की सेवा के रूप में उन्होंने अष्टपाहुड, पार्श्वनाथचरित्र एवं कार्तिकेयानु-प्रेक्षा का हिंदी-भाषांतर लिखा। समय-समय पर किशनगढ़ में आगत अथवा वर्षायोगरत आचार्य ज्ञानसागर जी, मुनि विद्यासागर जी, मुनि श्री श्रेयांससागर जी आदि के मुनिसंघों

के सान्निध्य में स्वाध्याय एवं पठन-पाठन में अपना समय देते थे। मुनि श्री विद्यासागर जी को विशेषतः हिंदी व संस्कृत का अध्ययन पंडित जी ने कराया था।

समय बीतने के साथ ही पंडित जी के हृदय में वैराग्य की वृद्धि होती गई और तीर्थक्षेत्रों की वंदना कर लेने के बाद एक दिन वाहन का त्याग कर दिया, जो उनके राग भाव के शिथिल होने का सूचक था। उक्त नियम के फलस्वरूप पंडित जी अपने दोनों पुत्रों के विवाह के अवसर पर बारात में कुचामन सिटी व नीमच नहीं गए। स्वयं के पुत्रों के विवाह में, बारात में नहीं जाना पंडित जी के मोह व राग के कम होने का एक अनुपम उदाहरण है।

पंडित जी के हृदय में उत्पन्न वैराग्य के अंकुर धीरे-धीरे पुष्ट होते गए। स्वामी समंतभद्र के शब्दों में वे घर में रहते हुए भी 'संसार शरीर भोग निर्विण्ण' थे। उनकी जीवनचर्या पर पं. दौलतराम जी का कथन 'गेहीपै गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है' पूरी तरह चरितार्थ होता था।

पंडित जी 31 जुलाई 1974 को 58 वर्ष की आयु में के. डी. जैन विद्यालय की सेवा से निवृत्त हो गए। अपने कार्यकाल में पंडित जी एक उत्कृष्ट आदर्श अध्यापक रहे। सह-अध्यापकों एवं छात्रों से उनका अत्यंत सौहार्दपूर्ण एवं वात्सल्यपूर्ण व्यवहार रहा।

उनकी सेवानिवृत्ति के समय मैं विद्यालय का मंत्री था। मैंने पंडित जी से निवेदन किया कि अध्यापकीय पद से सेवानिवृत्ति के पश्चात् वे विद्यालय के छात्रावास के अधीक्षक का पद सँभाल लेवें, जिसके लिए हम उन्हें समुचित वेतन प्रदान करेंगे। मेरे निवेदन का जो पंडित जी ने उत्तर दिया उसको सुनकर मैं एक ओर आश्चर्यचकित हुआ और दूसरी ओर उनकी उत्कृष्ट निःस्पृहवृत्ति के प्रति मेरा हृदय श्रद्धा से भर गया। वे बोले- "लुहाड़िया जी आप समझदार होकर भी मुझे सेवानिवृत्ति के बाद भी वेतन के लोभ में घर में ही फँसाये रखना चाहते हो। मैंने संकल्प किया हुआ है कि विद्यालय से सेवानिवृत्ति के पश्चात् मैं जीवन का शेष समय गृहत्यागकर संयम की साधना में व्यतीत करूँगा। प्रायः सेवानिवृत्ति के पश्चात् व्यक्ति कमाई के साधन की खोज में रहता है। किन्तु दृढ़ संकल्प के धनी ज्ञान और वैराग्य की ज्योति हृदय में जगाए पंडित जी ने स्वयं सामने आए कमाई के साधन को ठुकरा दिया और सेवानिवृत्ति के तुरंत पश्चात् कुछ समय में ही सभी गार्हस्थिक संकल्प-विकल्पों से मुक्त होकर सदा के लिए

घर-परिवार छोड़कर आचार्यकल्प श्रुतसागर जी महाराज के संघ में प्रवेश कर लिया। संघ में कुछ दिनों तक ब्रह्मचारी भेष में साधना का अभ्यास कर दिनांक 8 दिसम्बर 1974 को उस नर रत्न ने क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। किन्तु कोपीन और खण्ड वस्त्र भी उस मुक्ति पथिक को भार लग रहे थे और केवल 6 माह के अल्प समय के पश्चात् ही उन्होंने दिनांक 12 जून 1975 को सम्पूर्ण परिग्रह का त्यागकर महान् मुनि पद अंगीकार कर लिया और परमपूज्य मुनिराज समतासागर जी बन गए। नाम के अनुरूप समता-परिणामों के धनी पू. समतासागर जी महाराज ने साधुकाल में निर्दोष मुनिचर्या का पालन किया।

मुनिराज समतासागर जी महाराज आचार्य समंतभद्र द्वारा स्थापित स्वरूप के अनुसार ज्ञान ध्यान व तप में सदैव लीन रहते थे। स्वयं के स्वाध्याय के साथ-साथ संघ के साधुओं एवं ब्रह्मचारियों को भी पढ़ाते थे। वे तीन वर्ष, साढ़े पाँच माह के अल्प साधुकाल की साधना के बाद केवल 62 वर्ष की आयु में ही समाधिपूर्वक इस मनुष्य पर्याय को छोड़कर स्वर्ग सिधार गए। उनका देहांत अत्यंत चमत्कार पूर्ण रहा।

पू. समतासागर जी महाराज अन्य तीन मुनिराज पू. अजितसागर जी, पू. गुणसागर जी एवं पू. वर्द्धमानसागर जी के साथ कालू से नीमाच बिहार में थे। पू. मुनिश्री मार्ग में संघस्थ ब्रह्मचारी को शिक्षण देते हुए चल रहे थे कि एकाएक कटे हुए वृक्ष के समान गिर पड़े और अल्प समय में ही समाधिलीन हो गए। स्पष्टतः आगमचर्चा करते हुए उनका उपयोग शुभोपयोग में था एवं गिरने के बाद अवश्य ही उन्होंने शुद्धोपयोग को प्राप्त किया होगा। प्रत्यक्षतः किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा एवं मानसिक संताप का कोई कारण वहाँ प्रकट नहीं था और मुखमुद्रा पर अभिव्यक्त सौम्यता एवं शांति उनके अंदर के शुद्धोपयोग को द्योतित कर रही थी।

ऐसे उत्कृष्ट गृहस्थ-जीवन एवं आदर्श साधु-जीवन जीकर उस महान् साधक ने मानों एक प्रयोगात्मक श्रावकाचार एवं यत्याचार की रचना श्रद्धालुओं के पठन एवं आचरण के लिए कर दी। उन्होंने अपने मनुष्यभव को सफल बनाते हुए हम सबको प्रेरणादायी मार्गदर्शन प्रदान किया। ऐसे परमपूज्य समतासागर जी महाराज के चरणों में बारंबार नमोऽस्तु।

जयपुर रोड, मदनगंज-किशनगढ़

(राजस्थान)

व्यवहार रत्नत्रय

स्व. पं० लालबहादुर जी शास्त्री

जैन शास्त्रों में मोक्ष और मोक्ष के कारणों की चर्चा की है। कारणों से मतलब उनका मोक्षमार्ग से है। मोक्षमार्ग को उपाय और मोक्ष को उपेय माना है। उपायभूत मोक्षमार्ग के भी दो भेद किये हैं— एक निश्चय मोक्षमार्ग और दूसरा व्यवहार मोक्षमार्ग। निश्चय मोक्षमार्ग को निश्चय रत्नत्रय और व्यवहार मोक्षमार्ग को व्यवहार रत्नत्रय कहा है और लिखा है कि इन दोनों में साध्य साधक भाव है। अर्थात् निश्चय मोक्षमार्ग साध्य है और व्यवहार मोक्षमार्ग साधन है। इसी आशय को लेकर आचार्य अमृतचन्द्र ने लिखा है—

निश्चयव्यवहाराभ्यां मोक्षमार्गो द्विधा स्थितः ।

तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद्वितीयस्तस्य साधनम् ॥

अर्थात् निश्चय व्यवहार के भेद से मोक्षमार्ग दो प्रकार का है। इनमें पहला साध्य है और दूसरा साधन है।

इस कथन से स्पष्ट है कि व्यवहार रत्नत्रय को निश्चय रत्नत्रय की कारणता है, न कि इन दोनों से परे मोक्ष की। जैन विद्वान् प्रारम्भ से उक्त बात ही कहते आ रहे हैं। उन पर यह थोपना कि वे मोक्ष का कारण व्यवहार रत्नत्रय को ही मानते हैं, गलत है, मनगढ़न्त है। हमें यह भी नहीं सूझ पड़ता कि किसी विद्वान् ने व्यवहार रत्नत्रय को मोक्ष का मूल कारण बतलाया है और यदि बताया भी है, हमने यह नहीं सुना कि जो स्वयं कार्यरूप परिणत हो जाय वह मूल कारण है। उपादान के सम्बन्ध में तो यह कहा जा सकता है कि वह कार्यरूप परिणत हो जाता है, परन्तु सभी मूल कारण उपादान हों, यह बात नहीं है। वास्तव में तो मूल कारण आद्य कारण ही कहा जाता है और यदि इस अर्थ में व्यवहार रत्नत्रय को मूल कारण कहा जाय, तो कोई बेजा बात नहीं है। निश्चय रत्नत्रय के लिये व्यवहार रत्नत्रय की मूल कारणता भी उसी तरह है जिस तरह वृक्ष के लिये जड़ की कारणता है। जड़ के बिना यदि वृक्ष की स्थिति नहीं है, तो व्यवहार रत्नत्रय के बिना निश्चय रत्नत्रय की भी स्थिति नहीं है और जब निश्चय रत्नत्रय की स्थिति नहीं तब मोक्ष भी कहाँ टिक सकता है? अतः यह कहना भी गलत नहीं है कि पहले यदि व्यवहार रत्नत्रय न हो, तो निश्चय रत्नत्रय और मोक्ष दोनों ही नहीं हो सकते।

बीज वृक्ष का कारण है, वृक्ष पुष्पों का कारण है, पुष्प फलों का कारण है। फलोदय के समय जैसे बीज का कोई अस्तित्व नहीं रहता, उसी प्रकार मोक्षफल की प्राप्ति के समय व्यवहार रत्नत्रय का अस्तित्व नहीं रहता। पर बीज का वृक्ष, पुष्प, फल के लिये जो महत्त्व है वही महत्त्व व्यवहार रत्नत्रय का निश्चय रत्नत्रय और मोक्ष के लिये है।

समन्तभद्र स्वामी ने जो यह लिखा है 'जैसे बीज के अभाव में वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फलोदय नहीं होता, वैसे ही सम्यक्त्व के अभाव में सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फलोदय नहीं होता।' इस कथन में फलोदय से मतलब मोक्ष से ही है और सम्यक्त्व से अभिप्राय व्यवहार रत्नत्रय से है। रत्नकरण्ड में सबसे पहले उन्होंने दर्शन ज्ञान चारित्र को धर्म लिखा है और फिर दर्शन का लक्षण लिखा है 'श्रद्धानां परमार्थाना-माप्तागम तपोभृतां, त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्' अर्थात् परमार्थभूत देव शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना, तीन मूढतायें और आठ मद छोड़ना तथा आठ अंगों का पालन करना सम्यग्दर्शन है। इस लक्षण से स्पष्ट ही आचार्य का अभिप्राय व्यवहार रत्नत्रय से है। इसी व्यवहार सम्यक्त्व को लेकर उन्होंने लिखा है कि बिना सम्यक्त्व के ज्ञान चारित्र नहीं होते, न उनकी स्थिति, वृद्धि, फलोदय होते हैं। अतः वृक्ष के बीज की तरह व्यवहार रत्नत्रय को यदि मोक्ष का मूल कारण मान लिया जाय, तो क्या आपत्ति है? मूल कारण से मतलब यहाँ आद्य कारण से ही है, जैसा कि फलोदय के लिये बीज आद्य कारण है। वृक्ष की स्थिति निश्चय रत्नत्रय जैसी है और बाद में फलोदय की स्थिति मोक्ष जैसी है। इसलिये इसमें किसको आशंका है कि व्यवहार रत्नत्रय परम्परा से मोक्ष का कारण है? जैन विद्वान् बहुत पहले से ही व्यवहार को परम्परा से मोक्ष का कारण कहते आ रहे हैं।

व्यवहार रत्नत्रय मोक्ष का साक्षात् कारण नहीं है, किन्तु उसकी मूल कारणता से इनकार नहीं किया जा सकता है। किसी भी कार्य की उत्पत्ति में कारणों की जो परम्परा है उसमें पहला कारण ही मूल कारण है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि मोक्ष का साक्षात् कारण

निश्चय रत्नत्रय है और निश्चय रत्नत्रय का साक्षात् कारण परम्परा से प्राप्त व्यवहार रत्नत्रय की प्रकर्षता है। इस संबंध में हम आचार्य अमृतचन्द्र की समयसार की टीका के कुछ उद्धरण देते हैं-

‘अस्यात्मनोऽनादिमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रैः स्वरूप-प्रच्यवनात् संसरतः सुनिश्चलपरिगृहीतव्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्रपाकप्रकर्षपरम्परया क्रमेण स्वरूपमारोप्यमाण-स्यान्तर्मग्ननिश्चयसम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्रविशेषतया साधक-रूपेण तथा परमप्रकर्षमकरिकाधिरूढरत्नत्रयातिशय प्रवृत्तसकलकर्मक्षयप्रच्वलितास्खलितविमलस्वभाव-भावतया सिद्धरूपेण च स्वयं परिणममानः ज्ञानं मात्रमेकमे-वोपा-योपेयभावं साधयति’। (स्याद्वादाधिकार/पृ.५३१)

अर्थ- यह आत्मा अनादि काल से मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र से अपने स्वरूप से च्युत हो रहा है, किन्तु जब व्यवहार सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को यह भली भाँति ग्रहण करता है तब उस व्यवहार रत्नत्रय की प्रकर्ष परम्परा के क्रम से यह स्वरूप में अन्तर्मग्न होकर निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को ग्रहण करता है और उस निश्चय रत्नत्रय की विशेषता से साधकरूप होकर उसी रत्नत्रय की परमप्रकर्षता की पराकाष्ठा को प्राप्तकर उसके अतिशय से सकल कर्मों का क्षयकर अस्खलित विमल स्वभाव से सिद्ध अवस्था में स्वयं परिणत होकर ज्ञान मात्र स्वरूप उपाय-उपेय-भाव को साधता है।

इस कथन से दो बातें निश्चित होती हैं- एक तो यह कि व्यवहार रत्नत्रय पहले होता है और उसके पाकप्रकर्ष की परम्परा से जब स्वरूप में अन्तर्मग्न होता है, तब निश्चय रत्नत्रय होता है, दूसरी यह कि व्यवहार रत्नत्रय मूल कारण है और निश्चय रत्नत्रय की परम प्रकर्षता की पराकाष्ठा साक्षात् कारण है।

यहाँ मूल कारण व्यवहार रत्नत्रय अपने कार्य निश्चय रत्नत्रयरूप परिणत हुआ है और निश्चय रत्नत्रय-रूप साक्षात् कारण अपने कार्य मोक्षरूप में परिणत हुआ है। यह कहना नितान्त गलत है कि व्यवहार कभी निश्चय-रूप से परिणत नहीं होता। हमारा कहना है कि व्यवहार रत्नत्रय ही निश्चय रत्नत्रयरूप परिणत होता है। यह दलील भी अनुचित है कि व्यवहार का विषय ‘पर’ है और निश्चय का विषय ‘स्व’ है इसलिये व्यवहार निश्चयरूप परिणत नहीं होता। वास्तव में दोनों ही रत्नत्रय का विषय एक आत्मा है। अन्तर इतना है कि व्यवहार रत्नत्रय में आत्मा के दर्शन ज्ञान चारित्र के लिये अन्य देव शास्त्र गुरु आदि का

अवलम्बन लेना पड़ता है और निश्चय रत्नत्रय में आत्मा के दर्शन ज्ञान चारित्र के लिए आत्मा का ही अवलम्बन रह जाता है। सालम्बन ध्यान और निरालम्बन ध्यान की जो स्थिति है अथवा सवीचार और अवीचार ध्यान की जो स्थिति है, वही स्थिति कारण कार्य के प्रश्न में व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय की है। शीर्षासन प्रारंभ करनेवाला व्यक्ति पहले दीवाल का सहारा लेकर शीर्षासन करता है। बाद में बिना सहारे के शीर्षासन करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि सहारा लेकर शीर्षासन का अभ्यास बिना सहारे के अभ्यास में कारण नहीं है।

आचार्य अमृतचन्द्र ने ‘तत्त्वार्थसार’ में व्यवहार और निश्चय मोक्षमार्ग का जो कथन किया है, उसके कथन के दो श्लोक हैं-

श्रद्धानाधिगमोपेक्षाः शुद्धस्य स्वात्मनो हि याः।
सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा मोक्षमार्गः स निश्चयः॥
श्रद्धानाधिगमोपेक्षा या पुनः स्यु परात्मनाम्।
सम्यक्त्वज्ञानवृत्तात्मा स मार्गो व्यवहारतः॥

इन दो श्लोकों में पहले का अर्थ किया गया है- शुद्धात्मा का श्रद्धान, ज्ञान और उपेक्षा निश्चय मोक्षमार्ग है। और दूसरे का अर्थ किया है- परात्मा का श्रद्धान ज्ञान उपेक्षा व्यवहार मोक्षमार्ग है।

यहाँ प्रष्टव्य यह है कि यदि शुद्धात्मा का श्रद्धान, ज्ञान, उपेक्षा निश्चय मोक्षमार्ग है, तो व्यवहार मोक्षमार्ग में क्या अशुद्ध आत्मा का श्रद्धान ज्ञान उपेक्षा होती है?

आगे के श्लोक में जो परात्मा का श्रद्धान, ज्ञान, उपेक्षा होना बतलाया है, वहाँ परात्मा से क्या मतलब है? क्या स्वात्मा को छोड़कर या कोई दूसरा अभिप्राय है?

वस्तुतः दोनों श्लोकों में सभी पद एक जैसे हैं। अन्तर केवल दो पदों में है। पहले श्लोक में ‘स्वात्मनः’ पद है, जो षष्ठी विभक्त्यन्त है और दूसरे श्लोक में ‘परात्मना’ पद है, जो तृतीया विभक्ति का है, जिसका अर्थ होता है ‘परात्मा के द्वारा’। लेकिन लेखक ने इसका षष्ठीपरक अर्थ ‘परात्मा का’ किया है जो गलत है। और यह गलती ‘स्वात्मनः’ पद के साथ संगति बैठाने के कारण हुई है। वास्तव में तो दोनों ही जगह ‘स्वात्मना’ और ‘परात्मना’ पद होना चाहिये। अतः दोनों श्लोकों का संगत अर्थ इसप्रकार करना चाहिए।

अपने ही अवलम्बन से शुद्ध स्वरूप ज्ञान और उपेक्षा भाव निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है तथा पर के अवलम्बन से शुद्ध स्वरूप का श्रद्धान ज्ञान और उपेक्षा भाव व्यवहार

रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग है। यहाँ पर के अवलम्बन से अभिप्राय है देव शास्त्र गुरु के आलम्बन से और अपने ही अवलम्बन से मतलब है निर्विकल्पसमाधिरूप अवस्था, जहाँ पर का अवलम्बन नहीं रहता। जिसको छहढालाकार ने 'निज मौँहि निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो' कह कर स्पष्ट किया है।

आचार्य समन्तभद्र ने 'ज्ञान चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फलोदय बिना सम्यक्त्व के उसी तरह नहीं होते जिस तरह बीज के अभाव में वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फलोदय नहीं होते' यह जो दृष्टान्त दिया है वह बीज को फलोदय का उपादान मानकर नहीं दिया है, किन्तु फलोदय का मूल कारण मानकर दिया है। यदि मूल कारण कार्यरूप परिणत हो जाता है, तब क्या यह माना जाय कि बीज फलरूप परिणत हुआ है? यदि ऐसा हो तो फल से पहले की पर्याय जो फूल है उसको क्या कहा जायेगा? यदि फूल साक्षात् कारण है, तो कहना चाहिए कि साक्षात् कारण ही वहाँ कार्यरूप परिणत हुआ है न कि मूल कारण बीज। बीज तो साक्षात् कारण अंकुर का

है, फलोदय के लिये तो वह परम्परा से कारण है। यही स्थिति बीज की तरह व्यवहार रत्नत्रय की है। वह साक्षात् कारण निश्चय रत्नत्रय का है और निश्चय रत्नत्रय साक्षात् मोक्ष (फलोदय) का है। व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रयरूप परिणत होता है और निश्चय रत्नत्रय मोक्षरूप परिणत होता है।

वास्तव में तो उपादान कारण ही कार्यरूप परिणत होता है। जिस तरह स्थाल, कोष, कुशूल, घट आदि पर्याय के लिये मिट्टी उपादान है, उसी तरह व्यवहार निश्चय रत्नत्रय आदि तो आत्मा की पर्यायें हैं, उन सबमें एक आत्मा ही उपादान कारण है, जो प्रत्येक पर्यायरूप परिणत होती है।

इस तरह आचार्य समन्तभद्र के अनुसार बीज की जो स्थिति है, वही स्थिति व्यवहार रत्नत्रय की है। और मोक्ष के लिये व्यवहार रत्नत्रय मूल कारण है। उससे इनकार नहीं किया जा सकता।

'पं. लालबहादुर शास्त्री अभिनंदन ग्रंथ'
से साभार

सहनशक्ति की महिमा

महात्मा सुकरात बहुत बड़े विद्वान् और दार्शनिक थे। सारा यूनान उनका आदर करता था। परन्तु उनकी धर्म-पत्नी थी क्रोध की साक्षात् मूर्ति। हर समय लड़ती वह। मीठा बोलना उसने सीखा नहीं था। प्रतीत होता था-चीनी उसने कम खाई, सदा कुनेन ही खाती रही। सुकरात घर पर मौन बैठते, तो वह चिल्लाना आरम्भ कर देती "हर समय चुप ही बैठे रहते हैं!" वे कोई पुस्तक पढ़ते तो चिल्ला उठती "आग लगे इन पुस्तकों को! इन्हीं के साथ विवाह कर लेना था, मेरे साथ क्यों किया?"

एक दिन वे आये तो पत्नी ने इसी प्रकार बकना-झकना आरम्भ किया। सुकरात के कुछ विद्यार्थी और भक्त भी उनके साथ थे। उन्होंने इस बात का बहुत बुरा मनाया, परन्तु सुकरात मौन बैठे रहे। पत्नी ने इन्हें मौन देखा, तो उसके क्रोध का पारा और भी चढ़ गया। वह और भी ऊँची आवाज में बोलने लगी। सुकरात फिर चुपचाप बैठे रहे। पत्नी ने तब क्रोध से पागल होकर मकान के बाहर पड़ा हुआ गन्दा कीचड़ एक बर्तन में भरा, शीघ्रता से आकर सारा कीचड़ सुकरात के सिर पर

डाल दिया।

तब सुकरात हँसकर बोले- "देवी, आज तो पुरानी कहावत अशुद्ध हो गई। कहावत है कि गरजनेवाले बरसते नहीं। आज देखा कि जो गरजते हैं वे बरसते भी हैं।"

सुकरात हँसते रहे, परन्तु उनका एक विद्यार्थी क्रोध में आ गया। उस विद्यार्थी ने चिल्लाकर कहा- "यह स्त्री तो चुड़ैल है, आपके योग्य नहीं।"

सुकरात बोले- "नहीं, यह मेरे ही योग्य है। यह ठोकर लगा-लगाकर देखती रहती है कि सुकरात कच्चा है या पक्का। इसके बार-बार ठोकर लगाने से मुझे पता तो लगता रहता है कि मेरे अन्दर सहनशक्ति है या नहीं।"

पत्नी ने यह शब्द सुने तो झट उनके चरणों में गिर पड़ी। रोती हुई बोली- "आप तो देवता हैं। मैंने आपको पहचाना नहीं।"

यह है तप की महिमा! तप और सहनशीलता से अन्ततोगत्वा मनुष्य को विजय प्राप्त होती है। बुरे व्यक्ति भी अपना स्वभाव बदल देते हैं।

'बोध कथा' से साभार

मिथ्यात्व-निवारक धर्ममूर्ति 'चारित्रचक्रवर्ती'

डॉ. राजेन्द्रकुमार बसंत

श्री कार्तिकेय स्वामी ने कार्तिकेयानुप्रेक्षा में मुनिधर्म का स्वरूप निम्न रूप से व्यक्त किया है-

जो रयणत्तयजुत्तो, खमादिभावेहि परिणदोणिच्चं ।

सव्वत्थ वि मज्झत्थो, सो साहू भण्णदे धम्मो ॥३९२ ॥

अर्थ- जो पुरुष रत्नत्रय सहित हो, क्षमादि भावों से नित्य परिणत हो सब जगह (सुख-दुख, तृण-कंचन, लाभ-अलाभ, शत्रु-मित्र, निंदा-प्रशंसा, जीवन-मरण में) समभाव रूप रहे, राग-द्वेष रहित रहे, वह साधु है और उसी को धर्म कहते हैं वही धर्म की मूर्ति है ।

बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी मुनिराज का दर्शन करने का सौभाग्य नहीं मिला । आचार्यश्री की समाधि दि. १८/९/१९५५ को हुई उस समय लेखक छात्र के रूप में बड़वानी में था और उसने वियोग की पीड़ा में 'आज तो ऊषा लिये कुछ कालिमा है' कविता लिखी थी । आचार्यश्री का प्रेरक परिचय पं. प्रवर श्री सुमेरचन्द्र जी दिवाकर, सिवनी की अद्भुतकृति 'चारित्र-चक्रवर्ती' (प्रथम संस्करण १९५३) से हुआ । आगम के आलोक में जब आचार्यश्री के अंतरंग एवं बहिरंग स्वरूप पर विचार करते हैं तब वे श्री कार्तिकेय स्वामी जी की उक्त भावनानुसार धर्म की मूर्ति के रूप में सहज ही दिखाई देते हैं ।

जैन धर्म परसमय से स्वसमय, राग से वीतरागता, अल्पज्ञ से सर्वज्ञ और इंद्रिय से अतिन्द्रिय आनंद प्राप्त कराता है । इसका शाश्वत राजमार्ग 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता' रूप आत्मपरिणाम है । वस्तु-स्वरूप धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है । उससे मोह-क्षोभ परिणाम विहीन चारित्ररूप धर्म की प्राप्ति होती है । इसके साधक श्रावक एवं साधु होते हैं ।

ज्ञानावर्णादिक, द्रव्यकर्म, शरीरादिक नोकर्म तथा क्रोधादिक भावकर्म से भिन्न ज्ञान-स्वरूप आत्मा की रूचि या प्रतीति सम्यग्दर्शन कहलाता है । आचार्य कुन्दकुन्द ने रयणसार में कहा है कि जिनके आठमद, तीनमूढ़ता, छह अनायतन, शंकादि आठ दोष, सात व्यसन, सातभय और नियमव्रत के उल्लंघन स्वरूप पाँच अतिचार मिलाकर चवालीस दूषण नहीं होते हैं । (गाथा ७)

साध्य अनुरूप साधनों से इच्छित लक्ष्य की पूर्ति होती है । वीतराग शुद्धात्मा की प्राप्ति या मोक्ष की उपलब्धि

वीतरागी देव, वीतरागी शास्त्र, वीतरागी गुरु और वीतरागी धर्म के आश्रय से होती है । रागी देव-शास्त्र-गुरु-धर्म से वीतरागता का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता । दूसरा जैन दर्शन स्वावलम्बन से स्वतंत्रता का मार्ग बताता है । इसमें परावलम्बन इष्टकारक नहीं होता । तीसरा, व्यक्ति का इष्ट-अनिष्ट उसके कर्मोदय से होता है और उसी अनुरूप बाह्य साधन मिल जाते हैं । कर्मबंध आदि भावाश्रित हैं ।

उक्त दार्शनिक दृष्टि से आचार्य शांतिसागर जी धार्मिक जीवन यात्रा को देखते हैं तो सच्चे अर्थों में जैन साधु और धर्म की मूर्ति जैसे लगते हैं । आपका जन्म सन् १८७२ में बेलगांव जिले के येलगुल ग्राम में क्षत्रिय वंश में हुआ । आप चतुर्थ जैन थे । नामकरण सातगौंडा हुआ । आप स्वभाव से सरल, धार्मिक वृत्ति के संयमी जीवन के आराधक थे । उनमें नैसर्गिक साधुत्व था । शरीर से बलिष्ठ, मन से पवित्र और ज्ञान की पिपासा से युक्त थे । वे बचपन से ही स्वाध्याय प्रिय थे और चारों अनुयोगों का स्वाध्याय करते थे । आचार्यश्री के शब्दों में "जब हम १५-१६ वर्ष के थे तब, हिन्दी में समयसार तथा आत्मानुशासन वाँचा करते थे । उनके पढ़ने से हमें विशेष लाभ हुआ, वैसे अन्य सभी आगम उपयोगी ग्रंथ हैं ।" (चा. चक्र. प्रथम संस्क. पृ. ४५१) आपका लौकिक जीवन नैतिक प्रमाणिक और परोपरकारी था ।

पिता श्री की मृत्यु के चार साल बाद ४३ वर्ष की उम्र में सातगौंडा ने सन् १९१५ में श्री देवेन्द्र कीर्ति मुनिराज से क्षुल्लक दीक्षाग्रहणकर लघुमुनित्व धारण किया । आप जिनेश्वरी मार्ग के पथिक बने । आपके शब्दों में 'हम व्यवहार क्रियाओं को पालते हैं । किन्तु हमारा ध्यान निश्चय पर अधिक है' । (पृ. ६०) आपने प्रथम चातुर्मास को गनोली में किया । वहाँ आपने अनुभव किया कि समाज गृहीत मिथ्यात्व से पीड़ित है । अतः आपने गृहीत मिथ्यात्व छुड़ाने का संकल्प किया । इसमें आप अतिशयरूप से सफल रहे ।

गृहीत मिथ्यात्व त्याग का महान प्रचार-

चा. चक्रवर्ती पृष्ठ ७५ पर अंकित है "इन्होंने देखा कि लोगों में कुदेवों, रागी द्वेषी मिथ्यादेवों की भक्ति विद्यमान है । लोग जिनेन्द्र देव को भूलकर चतुर्गति संसार में डुबाने वालों की आराधना में संलग्न हैं, इससे इनके अंतःकरण में समाज के मिथ्यात्व रोग को दूर करने की भावना उत्पन्न हुई ।" इस उद्देश्य हेतु महाराजश्री ने नियम कर लिया 'जो

अपने यहाँ कुदेवों को विराजमान किए होगा, उसके यहाँ आहार नहीं करेंगे'। (पृ. ७९) आपके पास जो भी कुदेव सेवी आता, वह तत्काल मिथ्यात्व का त्यागकर व्यवहार सम्यक्त्व को धारण करता। जैनवादी में भी सभी कुदेवों की पूजा करते थे महाराजश्री की पुण्य देशना से सब श्रावकों ने मिथ्यात्व का त्याग किया और अपने घर से कुदेवों को अलग कर कई गाड़ियों में भरकर उन्हें नदी में गिरा दिया। (पृ. ७९) वहाँ के राजा ने इसका कारण पूछा तो महाराज श्री ने गणेश पूजा और रामचन्द्र जी की मूर्ति पूजा का अंतर समझाकर राजा को संतुष्ट किया। गणपति की पूजन बाद उन्हें जल में विसर्जित कर दिया जाता है। (पृ.८०) आचार्यश्री की तर्कणा बुद्धि से राजा-रानी संतुष्ट हुए।

लेखक के अनुसार 'महाराज ने दक्षिण के लोगों में कुदेवरूपी रोग देख उसके त्यागरूप औषधिदान द्वारा लोगों की श्रद्धा निर्मल की'। (पृ. १५१) आपने इसीप्रकार ब्राह्मणों से मांस और सुरापान का त्याग और जैन समाज में शूद्र जल का त्याग करवाया। 'कुदेव' से महाराजश्री का आशय 'रागद्वेषमलीमसा' रागी-देवी देवताओं से रहा होगा, ऐसा ध्वनित होता है। मूल लेखक ने भी कुदेव को स्पष्ट नहीं किया जैसा की अष्टम संस्करण के पृष्ठ क्रमशः ६७ एवं १३२ में कोष्ठक में 'अन्यमतियों के रागीद्वेषी मिथ्यादेव एवं अन्यमतियों के आराध्य-शासन देव' लिखकर काल्पनाशील संपादक जी ने किया है। यह उत्तर-विचार है, जैसा आगे स्पष्ट होगा। इससे अभिप्राय दूषित हुआ है।

मिथ्यादेवों के मंत्र भी वर्जित-

महाराजश्री ने अत्यंत प्रमाणिकता एवं बौद्धिक ईमानदारी से मिथ्यात्वी देवों की उपासना का त्याग करवाया। जैनबाड़ी में एक महानुभाव मिथ्यादेवों की भक्ति कर मंत्र से सर्प का विष उतारते थे। यह प्रश्न हुआ की वे जीवन रक्षा का यह काम करें या नहीं। उसे मिथ्यात्वत्याग के बंधन से मुक्त करने का महाराजश्री ने अनुरोध किया। महाराजश्री ने कहा जैन मंत्रों में अचिंत्य सामर्थ्य है। उन्होंने एक मंत्र साधने दिया, दो माह के भीतर। संयोग से वह मंत्र सार्थक सिद्ध हुआ। उसने जीवनभर मिथ्यात्व त्याग का नियम ले लिया। महाराजश्री की जिनवाणी पर अगाधनिष्ठा भी और उनकी संकल्प शक्ति भी प्रबल थी। आचार्यश्री ने हजारों लोगों से मिथ्यात्व का त्याग कराया। जबकि पीढ़ियों से पोषित मिथ्यात्व के त्याग का कार्य मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यंत दुरूह होता है। आचार्यश्री ने तंत्र-मंत्र-यंत्र साधना को जिनदीक्षा के

अनुकूल नहीं माना, यह ज्ञातव्य है की सभी देव नियम से प्रतिदिन जिनेन्द्र पूजन करते हैं। (ति.प./३/२२८-२२९)

उच्च पद वाला नीचे पद वाले को नमस्कार नहीं करता-

पं. प्रवर श्री सुमेरचंद्र जी ने चा. चक्रवर्ती पुस्तक के पृ. १६५ (नवीन संस्करण पृ. १४४-१४५) पर एक दिशाबोधक घटना का उल्लेख किया है। सन् १९२७ में महाराजश्री ससंघ शिखरजी की तीर्थ यात्रा पर बिहार करेंगे, इसकी विज्ञप्ति प्रकाशित की गई। उस पर "एक नामांकित वृद्ध पं. जी पूज्यश्री के समीप आये। सभा को प्रणामकर बड़े ममत्व के साथ कहने लगे, उत्तर की जनता वक्र प्रकृति की है। वहाँ कभी दिगम्बर मुनि का बिहार हमारे जीवन में नहीं हुआ, अब आपका संघ जाता है, इसको देखकर विद्वेषियों द्वारा विघ्न प्राप्त होगा। तब धर्म पर संकट आ जायेगा। अतः उचित होगा की पहले आप किसी देवता को सिद्ध कर लें। इससे कोई भी बाधा नहीं होगी।" महाराज जी बोले 'मालूम होता है, अब तक आपका मिथ्यात्व नहीं गया, जो हमें आगम विरुद्ध सलाह दे रहे हो' महाराज ने स्पष्ट करते हुये कहा 'क्या महाव्रती अव्रती को नमस्कार करेगा'।

पं. जी बोले 'नहीं महाराज, व्रती को नमस्कार नहीं करेगा'।

महाराज ने कहा- "विद्या या देवता सिद्ध करने के लिए नमस्कार करना आवश्यक है। देवता अव्रती होते हैं। तब क्या अव्रती को प्रणाम करना महाव्रती को दोषप्रद नहीं होगा।" महाराजश्री ने कहा 'डरने की क्या बात है। हमारा पंचपरमेष्ठी पर विश्वास है। उनके प्रसाद से विघ्न नहीं आयेगा और कदाचित् पापकर्म के उदय से विपत्ति आ जाय तो हम सहन करने तैयार हैं।' महाराजश्री का उत्साह, युक्तिवाद और आत्मविश्वास ने सभी को चकित कर दिया। शासनदेव के नाम से उच्च भूमिका वाले महानुभावों को आचार्यश्री की उक्त आगमपोषित विचारों से अपना मिथ्या अभिप्राय दूर करना इष्ट होगा। ऐसा होने पर वे कृत-कारित-अनुमोदना से इस अप्रियकर अहितकारक प्रवृत्ति से बच सकेंगे, क्योंकि व्रती द्वारा अव्रती देव की उपासना का उपदेश देना भी मिथ्यात्व का सूचक है।

मराठी समाचार पत्र 'सम्यक्त्व वर्धक' से पुष्टि-

पूज्य आचार्यश्री के व्यक्तित्व एवं भ्रातृत्व के प्रकाशन में तत्कालीन समाचार पत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके आधार पर घटनाओं को ऐसा रूप दिया गया जैसे कोई आँखों देखी लिख रहा हो। इसी क्रम में श्री हीराचंद मल्लूकचंद

दोशी सोलापुर द्वारा संपादित एवं प्रकाशित 'सम्यक्त्व बोधक' मराठी पत्रिका का एक दिसंबर अंक सन् १९२३, पृ. ४ के समाचार का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत कर रहा हूँ जो आचार्यश्री के प्रभाव को दर्शाता है। (जिनभाषीत, नवम्बर ०५)।

“ मुनि श्री शांतिसागर जी का केशलोंच मुकाम-शेडवाल- यहाँ मगंसर शुक्ला ८ के दिन मुनि शांतिसागर जी का केशलोंच बड़े समारोह के साथ हुआ। उस समय उस गांव के बाहर गांव के मिलकर तीन/चार हजार दि. जैन एकत्रित हुये थे। जैन समाज से मिथ्यात्व निकालने का और निर्माल्य का त्याग करने का उपदेश मुनिराज हमेशा देते हैं। गत चातुर्मास में कोन्पुर में दिये गये उपदेश से करीबन दो हजार जैनियों ने अपने घर से खडोंवा, बिठोवा, भवानी, यल्लम्मा आदि मिथ्या देवताओं को निकाल दिया है। करीब १५-१६ उपाध्ये (पुजारी) लोगों ने निर्माल्य को नहीं खायेंगे, ऐसी प्रतिज्ञा ली है। आज तक दस हजार जैनियों ने अपने घर से मिथ्या देवताओं को निकाला होगा। महाराज ने ऐसा कहा- करीबन २००/४०० लोगों ने क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि शासन देवताओं की उपासना नहीं करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञा उनका उपदेश सुनकर ली है, ऐसा उन्होंने (आचार्यश्री ने) कहा, इससे लगता है कि उनके उपदेश से मिथ्यात्व बिल्कुल समाप्त हो जायेगा और (उपाध्ये)पुजारी निर्माल्य खाना बंद कर देंगे ऐसी आशा निर्माण हो गई है।”

विद्वान् सम्पादक महोदय एवं पूज्य आचार्यश्री ने यह कल्पना भी नहीं की होगी कि जिस मिथ्यात्व रूपी पाप के विरुद्ध उन्होंने सामाजिक क्रांति की, उस क्रांति के विपरीत आचार्यश्री के संघ के उत्तराधिकारी एवं विद्वानगण निर्ममता पूर्वक मिथ्यात्व का पोषण करेंगे और अपना मांगलिक आशीर्वाद देंगे। 'जल में लगी आग' चरितार्थ हुई। व्रती अब्रतियों की शरण माँगने लगे।

उक्त समाचार से यह भी स्पष्ट होता है कि मिथ्यात्वी कुदेवों के साथ ही क्षेत्रफल-पद्मावती की उपासना का विरोध भी पूज्य आचार्यश्री ने किया था और विवेकीजनों ने उसकी उपासना नहीं करने की प्रतिज्ञा की थी।

विजातीय विवाह के संबंध में दृष्टिकोण-

श्री पं. सुमेरचन्द्र जी दिवाकर जी ने आचार्यश्री से प्रश्न किया 'क्या यह सच है कि आप आहार के पूर्व गृहस्थ से प्रतिज्ञा कराते हैं कि विजातीय विवाह आगम विरुद्ध है? ऐसी जो प्रतिज्ञा नहीं लेता वहाँ आप आहार नहीं लेते? इसके

उत्तर में महाराजश्री ने कहा कि- 'आहार दाता के यहाँ उपरोक्त प्रतिबंध की बात मिथ्या है।' आचार्यश्री के इस उत्तर से स्पष्ट है कि वे विजातीय विवाह को आगमविरुद्ध नहीं मानते थे। (संदर्भ-जैनमित्र, ६/१/१९३८, अंक ९वाँ, वीर सं.२४६४)

आचार्यश्री की धर्म देशना-

आचार्यश्री ने वीतरागता की प्राप्ति हेतु जीवनपर्यंत रत्नत्रयरूप जैन धर्म की साधना की। सम्यक्त्व, ज्ञान और संयम के वे आराधक थे। आपने अंतिम संदेश में दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय एवं कर्म की निर्जरा हेतु आत्मचिंतन करने का उपदेश/आदेश दिया। चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय हेतु संयम धारण करने की मार्मिक प्रेरणा दी। आत्मानुभव के बिना सम्यक्त्व नहीं होता। व्यवहार सम्यक्त्व निश्चय सम्यक्त्व का साधन बताया। आत्मचिंतन से मोक्ष सहित सर्व कार्य सिद्ध होने का कहा। 'धर्मस्य दया मूलं'। जिनधर्म का मूल सत्य, अहिंसा और दया है। सत्य में सम्यक्त्व आ जाता है। सम्यक्त्व धारण करो, संयम धारण करो, तब आपका कल्याण होगा। आचार्यश्री गृहीत मिथ्यात्व निवारक धर्म मूर्ति थे।

आचार्यश्री ने सज्जातित्व संरक्षण को धर्म या धर्म-रक्षा के रूप में कहीं भी नहीं दर्शाया। आचार्यश्री रत्नत्रयरूप धर्म एवं लोक व्यवहार की भेद रेखा लौकिक मान्यताओं की पुष्टि करना उचित नहीं है। आगमनिष्ठ आचार्यश्री परम्परा से प्रवाहित/पोषित वीतरागी आगम और मूल संघ के आदर्श प्रतिनिधि थे। उनका जीवन निष्पृह, निष्कपट, पावन था। उनका व्यक्तित्व अत्यंत विराट था उसे किसी संकीर्ण सीमा में बांधना उनका अवर्णवाद करना होगा। आचार्यश्री को किसी ऐसी संस्था या पोषक से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता जो धर्म और धर्म की मूर्ति की विकृतियों का पोषक हो। वे पक्षातीत थे, सत्यनिष्ठ थे। इसीरूप में आचार्यश्री को देखना सर्वहितकर होगा।

पूज्य आचार्यश्री को जैसा जाना, पढ़ा उसी अनुरूप ससंदर्भ लिखा है। कहीं अन्यथा निष्कर्ष ग्रहण किये हों तो विज्ञान मार्गदर्शन करें, सुधार हेतु तत्पर हूँ। पूज्यश्री के साथ वर्षों सम्पर्क में रहने वाले भव्यजन अभी भी विद्यमान हैं, जिनके मार्गदर्शन से गृहीत मिथ्यात्व पोषक प्रवृत्तियों से छुटकारा मिल सकता है। जिनेन्द्र देव के शासन में साधुत्व (वीतरागता) ही पूज्य है। जमोलोए सव्वसाहूणं।

बी-३६९ ओ पी.एम. अमलाई
जिला-शहडोल (म.प्र.)४८४११७

— अप्रैल 2007 जिनभाषित 11

दिगम्बर-परम्परा को बनाये रखने का दायित्व किस पर ?

पं. वसन्तकुमार जैन शास्त्री

'जिनभाषित' अंक दिसम्बर 2006 के सम्पादकीय में एक 'दिगम्बर जैन परम्परा को मिटाने की सलाह' लेख पढ़ने को मिला। ऐसे लेख और चिन्तन की परम आवश्यकता है। आज के परिवेश में सम्पूर्ण लेख में दिगम्बरत्व के प्रति आदर-सम्मान और वैराग्यजनक भावनाओं का सारगर्भित वर्णन किया गया है, जिससे दिगम्बरत्व की रक्षा एवं प्रमाणिकता प्रकट होती है। बहुत-बहुत धन्यवाद है सम्पादक महोदय को। जो व्यक्ति दिगम्बरत्व के प्रति उदासीन हैं, हतोत्साही हैं, वे वैराग्य को न परखकर, आसक्ति को मन में बिठाये हुए हैं। आगमानुसार दिगम्बर जैन सन्त पंचम काल के अन्त तक रहेंगे।

लेख के अंत में सम्पादक महोदय ने 'शिथिलाचार से दिगम्बरत्व को खतरा' शीर्षक से यह भी अहसास कराया है कि आज की कतिपय बुद्धिजीवी मानस विचारधाराएँ आखिर दिगम्बर जैन परम्परा में क्यों उभर रही हैं? तो आखिर दिगम्बर जैन परम्परा को बनाये रखने का दायित्व किस पर आता है? श्रावक पर या श्रमण पर?

यद्यपि श्रमण (सन्तजनों) के प्रति हम श्रावकों को कुछ भी सुधार-सुझाव देने का अधिकार नहीं के बराबर है, क्योंकि सन्तजन स्वयं सोलह संस्कारों से संस्कारित होकर नियमबद्ध हैं। उन्हें ही उचित अनुचित का ध्यान रखना चाहिए। क्योंकि समाज (श्रमण एवं श्रावकों) ने उन्हें पंच परमेष्ठी की कतार में खड़ा किया है और राग-विराग की मर्यादा बनाये रखने की उन्होंने शपथ ग्रहण की है, तो जिस गुरु ने उन्हें दीक्षा दी है, वे ही अपना उत्तरदायित्व निभावे। उन्हें पूर्ण अधिकार हैं कि वे स्वयं के शिष्य यदि मर्यादा का बार-बार उल्लंघन करते हैं, तो उनका पिच्छी कमण्डलु छीन लें।

आज सन्तजनों (मुनि-आर्यिका-ऐलक-क्षुल्लक) में जो शिथिलाचार पनप रहा है, उसका मूल कारण उनको दीक्षा देने वाले आचार्यश्री का अपने शिष्य के प्रति उदासीन हो जाना है।

मेरी आयु 75 वर्ष की हो चुकी है और मैंने पूर्वाचार्य-वर श्री 108 वीरसागरजी महाराज, आचार्यवर शिवसागरजी महाराज, आचार्यवर धर्मसागरजी महाराज के विशाल संघों का सान्निध्य प्राप्त किया है और उन संघों पर आचार्यश्री का कठोर अनुशासन भी देखा है। उनके शिष्यों को सदैव अपनी

मुनि मर्यादा के प्रति सावधान रहते देखा है। मैंने अनेक बार देखा है कि श्रावकजन उन आचार्यों के सामने दुनियादारी की बातें करते हुए डरते थे। उन आचार्यों को न तो किसी भी प्रकार का अपने नाम का कोई मठ या भवन बनाने का व्यामोह था और ना लिप्सा। वे और उनके शिष्य बराबर अपनी साधना में रत रहा करते थे। किन्तु आज मुझे मुनि विमर्शसागर महाराज की 'सोचता हूँ कभी-कभी' संकलन की वे पंक्तियाँ रह रह कर व्यथित करती रहती हैं-

सोचता हूँ कभी-कभी आजकल-कतिपय साधु पंथवाद की पतंगें उड़ा रहे हैं।

काटने एक दूसरे की पतंग पेच भी लड़ा रहे हैं। श्रावक के हाथ पकड़ा डोर-गिरा निरन्तर ढील बढ़ा रहे हैं। तो कुछ श्रावक, दूर से ही पंथवाद की पतंगें और पेंचों की उमंगें देख ताली बजा-बजा पंथाग्रही साधुओं का उत्साह बढ़ा रहे हैं।

मेरा यह लेख पढ़कर आप मुझे उलाहना दे सकते हैं कि आपको क्या अधिकार है दिगम्बर सन्तों के प्रति कुछ भी कहने का?

बिल्कुल ठीक है आपका उलाहना। लेकिन मैं दिगम्बर सन्तों का परमभक्त अपने आपको मानता हूँ। उन्हें परमेष्ठी पद पर आरूढ़ हुआ देखकर उनकी पूजा, भक्ति करता हूँ। तब कोई मेरे आराध्य के प्रति शंका की अँगुली उठाता है और मैं भी उस शंका में सच का अहसास करता हूँ, तो मेरी अन्तर आत्मा रो उठती है कि त्यागी होकर भी अत्यन्त रागी क्यों बनता जा रहा है मेरा आराध्य सन्त? किसकी नजर लग गई है इनको? कौन इनको भ्रष्ट करने के पीछे लगा हुआ है। ऐसे में, मैं उन्हें ही, मेरे आराध्य सन्त जनों को ही तो कहूँगा कि आप सम्हलकर रहिए। आप त्यागी हैं। बाहर की वस्तुओं के त्याग का नाम ही त्याग नहीं है, अपितु अन्तरंग के क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, मोह के त्याग का नाम ही असल में त्याग है।

तो मेरी अन्तर्व्यथा किसे कहूँ और दूसरा मेरी इस व्यथा को सुनेगा भी क्यों? मैं तो परम पूज्य दिगम्बराचार्यों से ही निवेदन कर सकता हूँ कि अपने शिष्यों में यदि शिथिलाचार नजर में आये तो, नरम मत होइए कठोर अनुशासन को काम में लीजिए। वह शिष्य चाहे मुनि हो या आर्यिका, क्षुल्लक हो या क्षुल्लिका, उसे मर्यादा में रखने का अधिकार आपको ही

है। उनमें शिथिलाचार पनपाने या मिटाने का दायित्व आप पर है, शतप्रतिशत आप पर है।

भक्ति भावना से प्रेरित होकर इस कठोर निवेदन के प्रति क्षमा प्रार्थी हूँ। इसके अतिरिक्त मैं उन श्रेष्ठजनों-श्रावकों से भी विनम्र निवेदन करना चाहूँगा कि अपनी सांसारिक लालसाओं की पूर्ति के लिए इन भोले-भोले सन्तों को ख्याति लाभ के प्रलोभनों में फँसाकर दुर्गति का मार्ग ना दिखावें। क्यों कि अपनी मर्यादा भंग करने पर जितना दोष उन्हें लगता है उससे दुगुना दोष आपको भी लग जाता है।

शिवाड़ (सिवाई माधोपुर) राजस्थान

सम्पादकीय टिप्पणी

विद्वान् और अनुभवी लेखक ने मुनियों के शिथिलाचार

के लिए उनके गुरुओं को उत्तरदायी माना है और सुझाव दिया है कि गुरुओं को उन पर कठोर अनुशासन करना चाहिए, और यदि वे आज्ञापालन नहीं करते, तो उनके पिच्छी-कमण्डलु छीन लेना चाहिए अर्थात् दीक्षाभंग कर देनी चाहिए। यह सुझाव समीचीन है, क्योंकि दीक्षा-छेद की आज्ञा आगम में दी गयी है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि गुरु (आचार्य) ही शिथिलाचारी हो, तो गुरु और शिष्य दोनों के शिथिलाचार का उत्तरदायित्व किस पर है? उनके पिच्छी-कमण्डलु छीनने का अधिकार किसे है? यह यक्षप्रश्न सम्पूर्ण जैन समाज के लिए विचारणीय है।

रतनचन्द्र जैन

कुण्डलपुर के बड़े बाबा पर उपसर्ग

ब्र. अमरचन्द्र जैन

पढ़ा था मुगलों ने बड़े बाबा की कीर्ति सुनकर अपने धर्मानुसार कुण्डलपुर आकर मूर्ति को खंडित करने का शौर्य (उद्योग) किया था। अतीत की इस घटना में वे इस अतिशयकारी मूर्ति का कुछ बिगाड़ नहीं पाये और उल्टे पाँव भाग गये और आज विधर्मियों ने नहीं, साधर्मी भाई ने ही अपने भावों से बड़े बाबा को चीर बीच से दो टुकड़े कर (खंडित कर) जोड़कर उसे फोटो बनाकर एक पुस्तक लिखी 'कुण्डलपुर कोहराम' और चित्र को उक्त पुस्तक के मुखपृष्ठ पर छापकर अपनी तीव्रतम कषायों (कृष्ण लेश्या का) का लेखा प्रस्तुत किया है।

जैनदर्शन में द्रव्य हिंसा से कहीं बहुत बढ़कर भाव हिंसा कही गयी है और भावों के द्वारा ही पापों का बंध होता है। मेरे भाई ने भावों से ही बड़े बाबा को खंडित प्रदर्शित किया और हंता बनकर शांति एवं आनन्द का अनुभव कर रहा है और लोक में प्रशंसा पाने की पात्रता की भीख माँग रहा है।

आज मेरे साधर्मी बंधु ने भावों से हिंसाकर (वचन) लेखन द्वारा प्रदर्शन किया है, अब द्रव्यरूप से कार्य शेष रह गया है, तो क्या मुगलों की तरह यह भाई बड़े बाबा को खंडित करने का अब उद्योग करेगा? इस 'उपसर्ग' से 'बड़े बाबा' को बचाने को मैं भारतवर्ष के हर पुरुष महिला एवं बच्चे से अपील करता हूँ।

जब मुखपृष्ठ पर जिनेन्द्र देव की यह अवमानना की हो, तो आप उक्त (वगैर देखे ही) पुस्तक के गर्भ में क्या है, अंदाज लगा सकते हैं। भगवान् की प्रतिमा के चित्र को इस विद्रूपता से प्रकाशित करने का मैं तीव्र विरोधक हूँ।

हे 'बड़े बाबा' इस पाप से किस गति का बंध होगा?

आक्रोश एवं घोर अज्ञानता के अंधकार से इस अंधे जीव को क्षमा कर देना। उसे खबर नहीं कि वह क्या कर बैठा! यह लिखते मेरी लेखनी काँप रही है। इस 'कृत्य' को सपने में भी कोई जैन धर्मी सोच सकता है क्या?

हम नहीं जानते यह पुस्तक प्रकाशित कर लेखक, संपादक, प्रकाशक श्री भाई अजित टोंग्या समाज से क्या कहना चाहते हैं तथा क्या करना उन्हें इष्ट है? यह जिनभक्त की भक्ति की कौन सी विधा है? अभी तक के इतिहास में मैंने ऐसा कुकृत्य नहीं पढ़ा। अरे भाई जिनवाणी के पृष्ठ यदि असावधानी से धरती पर गिर जायें या फट जायें, तो उसे उठाशीश से लगा पश्चाताप कर दुःख करते हैं। इस अवमानना, प्रमाद का प्रायश्चित्त लेते हैं और मेरे भाई ने जिनवाणी को नहीं 'जिन' को ही बुद्धिपूर्वक चीर डाला?

अरे भाई पुराण में पढ़ा कि मात्र णमोकार मंत्र को लिखकर मिटाने में नरक गति का बंध हो गया और आपने लाखों जैनधर्मियों की आत्मा दुःखायी है, घोर आसादना की है, उसका प्रतिफल क्या होगा? नरक से नीची भी कोई गति है क्या?

भाई टोंग्या का अगला कदम क्या होगा, नहीं जानता। इस कार्य की निन्दा करें पर यदि मन-वचन और काय से, इन्होंने कोई ऐसा उद्योग किया तो क्या होगा? अभी कहने में असमर्थ हूँ। अतः हर जैन से मैं प्रार्थना करता हूँ कि बड़े बाबा को इस उपसर्ग से बचायें और पुण्य लाभ करें।

श्री महावीर दि. जैन उदासीन आश्रम,
कुण्डलपुर (दमोह)

कुण्डलपुर में दिगम्बरजैन साधु

मनैला अन्ने-मारिया पोप
टॉम्स रिबर, यू. एस. ए.

वेब साइट- www.neo-hippy.com/jainmonks.html

2006 में यात्रा विवरण के सन्दर्भ में प्रकाशित लेखों की प्रतिस्पर्धा में भाग लेनेवाला लेख

यह लेख दिगम्बर जैन मुनि संघ,¹ जो कुण्डलपुर² के समारोह में उपस्थित था, उसके संबंध में है। मैंने अपने पति के साथ भारत में दिसम्बर, 2005 से मार्च, 2006 तक चार माह भ्रमण किया। हमने कई स्थानों का भ्रमण किया, कुण्डलपुर उनमें से एक है। इस लेख का कथानक हमारे उन अनुभवों से संबंधित है जो हमने जैन बंधुओं और दिगम्बर जैन साधुओं के बीच प्राप्त किए।

हमारे चार माह भारत प्रवास में, हम लोग खजुराहो³ गए, जहाँ मंदिरों में कामोत्पादक दृश्य दिखाए गए हैं। वहाँ हमें बताया गया कि एक छोटे से गाँव कुण्डलपुर में दो दिवसी समारोह⁴ का आयोजन है, जहाँ पचास जैन आर्यिकाओं की दीक्षा होना प्रस्तावित है व सैकड़ों दिगम्बर जैन साधु वहाँ इकट्ठे होंगे। हम लोग एक जैन परिवार के साथ उनकी कार से उस समारोह में सम्मिलित होने के लिए रवाना हुए। कुण्डलपुर में जो हमारा अनुभव रहा, उससे हमारे आत्मिक चिंतन में अत्यधिक उन्नति हुई और हमेशा के लिए भारतीय धर्मों के बारे में हमारे विचारों में आमूल परिवर्तन हुआ।

खजुराहो में वास्तव में, ऐसे मंदिर हैं जिन्हें कोई देखना न भूलेगा। मंदिर पूरे प्रांगण में फैले हुए हैं और सभी मंदिरों को देखने के लिए या तो साइकिल या रिक्शा को किराए पर लेना आवश्यक है। आप घण्टों तक उन मंदिरों में उत्कीर्ण कलाकृतियों को देखकर आनंद ले सकते हैं। ये कलाकृतियाँ मानव जीवन की प्रतिदिन की क्रियाओं का चित्रण दर्शाती हैं। लेकिन इन मंदिरों को विश्वख्याति प्राप्त है उन कामोत्पादक चित्रों के कारण जो उनमें उकेरे गए हैं।

खजुराहो जाना यद्यपि महँगा होता है लेकिन फिर भी यह एक ऐसा स्थान है जो बार-बार देखा जा सकता है। मंदिरों का अवलोकन और स्वादिष्ट भोजन के अतिरिक्त यहाँ अन्य कुछ भी देखने को नहीं है। कोई भी पर्यटक जो थोड़े समय के लिए भारत प्रवास पर आता है, खजुराहो जैसे शांत वातावरण की प्रशंसा करेगा।

मंदिरों के समूह में एक दिगम्बर जैन मंदिर है, जहाँ

हमें बताया गया कि कुछ दिन पूर्व ही वहाँ से एक दिगम्बर साधु का प्रवास हुआ है। मैं दिगम्बर साधुओं के बारे में पूर्णतः अनभिज्ञ थी, इसलिए उनके बारे में मैंने अपने पति से पूछा, जिन्होंने बताया कि ये साधु नग्न होते हैं।

मैंने पश्चिम के ऐसे समुद्र तटों के बारे में पढ़ा था कि वहाँ पूर्ण नग्न रहा जा सकता है। लेकिन इसके अलावा अन्य स्थानों पर नग्न विचरण करना न केवल अनुपयुक्त है बल्कि कानून के विरुद्ध भी है।

माइक और मैं, दोनों ही ऐसे नग्न जैन साधुओं के बारे में और अधिक जानने के लिए उत्सुक हो गए। अतः हमने होटल पहुँचकर यह पूछा कि हम कहाँ पर जाकर दिगम्बर जैन साधुओं को देख सकते हैं। हमें बताया गया कि इसके बारे में पड़ोस के 'जैन होटल' के मालिक से मालूम किया जा सकता है। वह परिवार अत्यंत सहृदय था और उनके पिता ने हमसे आग्रह किया कि हम उनके पुत्र और पुत्रवधू के साथ कुण्डलपुर उस उत्सव को देखने जाएँ।

हमने होटल में जाकर कई घण्टों तक विचार-विमर्श किया। कुण्डलपुर की यात्रा में मात्र दो हजार रुपये यानी पचास डालर का खर्च आया। यह खर्च कार-यात्रा के लिए कोई अधिक नहीं था, बावजूद इसके कि कुछ परिवार पचास डालर में पूरे एक सप्ताह का कार्य चलाते हैं।

दूसरे दिन प्रातः हम लोग दो दिन के प्रवास के लिए उस जैन परिवार के पास पहुँच गए। जो यात्रा दो घण्टे की बताई गई थी, उसमें पाँच घण्टों का समय लग गया। सड़क अत्यधिक जर्जरित थी, अतः ड्राइवर को बीस कि.मी. प्रति घण्टे की रफ्तार से अधिकांश समय कार चलाना पड़ रही थी। इस यात्रा में मुझे, उनके जैनधर्म के बारे में साथी दम्पति से पूछने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय रीति-रिवाज और भोजन बनाने आदि के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। जैनियों के गुरु अधिक ज्ञानवान् होते हैं, जो धर्म की शिक्षा देते हैं और किस प्रकार जीवन-यापन करना चाहिए, बताते हैं। ऐसे गुरु अत्यधिक सम्मानीय और

सब प्रकार के प्रश्नों के समुचित समाधान देने वाले होते हैं।

हम दोपहर में लगभग तीन बजे कुण्डलपुर पहुँचे और हमें यह देखकर आश्चर्य मिश्रित क्षोभ हुआ कि सैकड़ों कारों खेतों में पार्क की गई थीं और हमें अपनी कार रखने के लिए कोई जगह खाली नहीं थी।

कुण्डलपुर मात्र एक तीर्थस्थान है, जहाँ पहाड़ियों पर कई मंदिर स्थित हैं। कुण्डलपुर जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म स्थान है।⁵ यह स्थान दिव्य आनंद और शांति प्रदान करता है। सभी मंदिर एक दूसरे से एक पथ के द्वारा जुड़े हुए हैं, जिसका उपयोग जैन तीर्थयात्री एक मंदिर से दूसरे मंदिर में जाने के लिए करते हैं। हमारे वहाँ पहुँचने के तुरंत पश्चात् हम उस समारोह में सम्मिलित हुए, जिसमें पचास महिलाएँ⁶ आर्थिका दीक्षा लेने वाली थीं। वे सभी पूर्ण ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का व्रत जीवनपर्यंत के लिए लेने वाली थीं।

यह समारोह एक बहुत बड़े शामियाने के अंदर आयोजित किया गया था जिसमें हजारों जैन धर्मावलम्बी बैठे थे। चूँकि हम ही वहाँ केवल विदेशी थे, इसलिए स्वाभाविक रूप से हमारे ऊपर सभी का ध्यान गया। अगली पंक्ति में पहुँचकर समारोह को देखना लगभग असंभव था, लेकिन भारतीयों ने अथक परिश्रम कर सैकड़ों लोगों में से हमें आगे पहुँचाया। हम सब लोग जमीन पर बैठे और हमें शांत रहने को कहा गया। मैं उनकी भाषा नहीं समझ पा रही थी लेकिन दीक्षा लेने वाली महिलाओं को नजदीक से देखने पर उनकी सफेद साड़ी में सिर के ऊपर खून के धब्बे दिख रहे थे। सभी साधु और दीक्षार्थियों ने अपने बाल निकाल दिए थे। मुझे बाद में बताया गया था कि उन्होंने अपने बाल अपने हाथों से निकाले थे।

वहाँ लगभग अस्सी साधु नग्न अवस्था में बेंचों पर बैठे थे।⁷ मंच के बायीं ओर पचास दीक्षार्थी महिलाएँ बैठी थीं। उनके गुरु एक ऊँचे सिंहासन पर मंच के दाईं ओर विराजमान थे। वे माइक्रोफोन (ध्वनिग्राही) से बोल रहे थे और एक-एक दीक्षार्थी महिला उनके निकट स्थित दूसरे माइक्रोफोन से बोलती जा रही थीं। वे आपस में संवाद कर रहे थे। भीड़ शांतिपूर्वक सुन रही थी और बीच-बीच में हँसती भी थी। गुरुजी प्रमोद स्वभाववाले दिख रहे थे। मैं सोचती हूँ कि इस समय ही सब दीक्षार्थियों ने दीक्षा स्वीकार की होगी। एक घण्टे तक समारोह को देखने और बहुत सारे फोटो लेने के बाद हम लोगों ने भोजन करने का विचार किया। मुझे प्रसाधनों का उपयोग करना था। मैं टीन के उन

शौचालयों की ओर गई जो शामियाने से कुछ दूर पर बने थे। वे शौचालय अत्यन्त गंदे थे, इसलिए मैंने उनका उपयोग नहीं कर, कमरा मिलने का इंतजार किया।

हम लोग बाहर भोजन करने गए और हमने कुछ शाकाहारी पकौड़ा और अन्य वस्तुएँ ग्रहण कीं। इसके बाद हम लोग मुख्य परिसर में गए और एक कमरा लेने का प्रयत्न किया। जैन दम्पति जो साथ था, उन्होंने उस व्यक्ति से बात की जिसे कमरा देने की जबाबदारी दी गई थी। उसने बताया कि कोई भी कमरा खाली नहीं था और बहुत से लोग लाइन में लगकर बिस्तर आदि बाहर सोने के लिए प्रतीक्षारत थे। उस जैन दम्पति ने मुझे और मेरे पति को विशिष्ट अतिथि बताया और एक कमरा देने का आग्रह किया। काफी इंतजार के बाद जैन दम्पति को एक कमरे की चाबी मिलने में सफलता मिल गई। यह कोई बहुत अच्छा कमरा नहीं था लेकिन इसमें दो पलंग और जुड़ा हुआ प्रसाधन था, जो हम चार व्यक्तियों के लिए था। हम लोगों ने अगले कुछ घण्टे मंदिरों के दर्शन में लगाए। हम लोग पहाड़ के ऊपर गए और बड़े बाबा- प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् की मूर्ति के दर्शन किए। पहाड़ी के ऊपर निरंतर निर्माण कार्य हो रहा था, क्योंकि बड़े बाबा के लिए नए मंदिर का निर्माण किया जा रहा था।

हम लोग शाम छह बजे भोजनशाला में गए। उन्होंने सैकड़ों लोगों को बिना किसी शुल्क के भोजन दिया। और हम सब भोजन प्राप्त करने के लिए दूसरों को हटाकर प्रयत्नशील थे। हमें बताया गया था कि तीर्थ के धार्मिक नियमों के अनुसार भोजन मिलना शीघ्र ही बंद होने वाला था। भोजन स्वादिष्ट था- चपाती, चना-मसाला और अन्य चीजें। हमने अपनी प्लेटें एक बहुत बड़े टीन में रख दीं जो फर्श पर रखा गया था।

भोजन के बाद हम लोग सोने चले गए। हम लोगों को सुबह जल्दी उठकर मंदिरों में होने वाली प्रार्थना⁸ में सम्मिलित होना था मैं रात में ठीक से सो नहीं सकी। कमरे में गर्मी बहुत थी, मच्छर बहुत थे तथा बाहर बहुत शोर हो रहा था, जहाँ सैकड़ों लोग खुले आसमान के नीचे चाँदनी में सो रहे थे।

कुण्डलपुर में प्रार्थना बहुत सुबह सूर्योदय के पूर्व होती है। वहाँ प्रथम मंदिर तक पहुँचने हेतु सीढ़ियों द्वारा पर्वत की चढ़ाई प्रारंभ हो जाती है। यात्री एक-एक मंदिर में जाने लगते हैं। वहाँ लगभग साठ मंदिर हैं।

प्रत्येक व्यक्ति मंदिर में प्रसाद⁹ लेकर आता है, जो

चावल और फल होते हैं। जैन मंदिर में जाकर वे अपने भगवान् को प्रसाद भेंट करते हैं और फिर प्रार्थना करते हैं।¹⁰ इसप्रकार करके, उसके बाद अगले मंदिर में जाते हैं।

एक मात्र विदेशी पर्यटक होने के कारण भारतीय लोग हमें घूरकर निरंतर देखते हैं और बाद में हमसे हमारा नाम और किस देश से आये हैं, यह पूछते।

लगभग दोपहर¹¹ को हम नीचे उसी मंदिर में आ गए, जहाँ से हमने प्रातः यात्रा प्रारम्भ की थी। यहाँ हमने खुले आसमान में नग्न साधुओं को अपने गुरु के चारों ओर बैठे देखा। जैन माताएँ¹² साधुओं को घेरकर बैठी थीं। यह बैठने का ढंग अत्यन्त लुभावना था। ताँबो जैसे रंग के साधुओं को घेरकर सफेद साड़ी पहने माताएँ बैठी थीं। बाद में हमें बताया गया कि इस अवसर पर नई दीक्षित माताओं को उनके गुरुद्वारा नया नाम दिया गया।¹³

इस समारोह के बाद जैन साधु अपने-अपने कक्षों में चले गए। वे आसानी से इधर-उधर जा आ रहे थे। अपने-अपने कक्ष में वे जैन धर्मावलम्बियों से मिलकर उनके प्रश्नों के या तो उत्तर दे रहे थे या धर्म की बातें उन्हें बता रहे थे।

माइक और मैंने एक-दो साधुओं से बात की। वे बहुत अच्छी अँग्रेजी में बात कर लेते थे। हमें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अधिकांश साधुओं ने अपने बहुत अच्छे सम्पन्न पद और स्थिति को छोड़कर, सभी कुछ त्यागकर ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया था। जैन साधु पूर्व में उच्च पदों, जैसे इंजीनियर, एकाउण्टेण्ट, शेयर दलाल आदि पर प्रतिष्ठित थे। इसीप्रकार जैन माताएँ भी उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएँ थीं, जिन्होंने सब कुछ त्यागकर दीक्षा ग्रहण की थी।

इतने उच्च पदों पर प्रतिष्ठित होने और सम्पन्न होने के बावजूद भी उन्हें मानसिक संतोष और शांति नहीं मिली थी। इसलिए साधु एवं माताएँ इस धार्मिक मार्ग में आए थे, जहाँ उन्हें उन सभी प्रश्नों के उत्तर प्राप्त हो गए थे जिनको वे खोज रहे थे।

मैंने उनमें से एक से पूछा, आप इसप्रकार सब कुछ छोड़कर क्या अब प्रसन्न हैं? उनका उत्तर था, हाँ, मैं प्रसन्न हूँ और प्रत्येक क्षण मेरी प्रसन्नता बढ़ती जा रही है।'

मेरे पति ने कम दार्शनिक प्रश्न पूछे, जैसे, क्या आपको ठण्ड नहीं लगती? या 'क्या आपको कभी आइसक्रीम खाने की इच्छा नहीं होती?'

दिगम्बर जैन साधु पूरे भारत में छोटे-छोटे गाँवों में

पूरे जीवन भ्रमण करते हैं। वे कभी वस्त्र नहीं पहनते, न यात्रा में किसी वाहन का उपयोग करते हैं। वे नग्न ही एक शहर से दूसरे शहर में भ्रमण करते हैं। उनका ध्येय गाँव-गाँव में जैनधर्म का प्रचार करना और अन्य लोगों की सहायता करना होता है। वे हमेशा एक पिच्छिका और पानी के लिए कमण्डलु साथ में रखते हैं। पिच्छिका मयूरपंख की बनी होती है और वे उस स्थान पर, जहाँ उन्हें बैठना होता है, प्रमार्जन करते हैं जिससे किसी क्षुद्र जीव-जन्तु का घात न हो।

नग्न साधुओं के धर्म को दिगम्बर धर्म कहा जाता है। वे कभी वस्त्रों का उपयोग नहीं करते क्योंकि वे नियमित गृहस्थ जीवन का त्याग कर चुके हैं। उन्होंने सभी प्रकार के परिग्रह का त्यागकर इस धार्मिक विधि को अपनाया है। माताएँ केवल सफेद साड़ी ही पहनती हैं।

मुझे यह जानकर भी आश्चर्य हुआ कि साधु और माताएँ एक दूसरे को साधु ही कहती हैं।¹⁴ जैन अपने साधुओं का बहुत सम्मान करते हैं और हमेशा उन्हें प्रणाम (झुककर) करते हैं। वे कभी भी उनके सामने नहीं चलते और न कभी उन्हें स्पर्श करते हैं। वे केवल उनकी आज्ञा से पैर छू सकते हैं। यही उनका आशीर्वाद देने का तरीका है।¹⁵

मैंने और मेरे पति ने उन्हें आहार ग्रहण करते हुए भी देखा। साधु और माताएँ दिन में केवल एक बार ही आहार मध्याह्न में करते हैं और उन्हें केवल जैन धर्मावलम्बी ही आहार देते हैं। आहार के समय जैन परिवार एक समूह में खड़े होकर साधुओं और माताओं से उनके यहाँ ही आहार ग्रहण करने के लिए आग्रह करते हैं। जब विधि के अनुसार वे आहार प्रदान करने वाले व्यक्तियों का निर्णय करते हैं एवं उसके शांत स्थान पर जाकर आहार-ग्रहण करते हैं। साधु खड़े होकर केवल अपने हाथों में ही आहार ग्रहण करते हैं। वे थोड़ा आहार सामग्री हाथों पर रखे जाने के बाद उसे मुँह की ओर ले जाकर, मुँह से चबाकर भोजन लेते हैं।

दिगम्बर जैन पूर्ण रूपेण शाकाहारी होते हैं और वे कुछ सब्जियों या फलों का उपयोग करते हैं। मांसभक्षण के अलावा भी वे अण्डे, दूध के पकवान,¹⁶ प्याज, लहसुन आदि का उपयोग नहीं करते।

यद्यपि हमारा धर्म अलग है, हम जैन धर्म को नहीं पालते, लेकिन फिर भी भारतीयों ने हमें बहुत आदर-सत्कार दिया और कई अवसरों पर आवश्यकता से अधिक हमारा ध्यान रखा। हमारी कुण्डलपुर यात्रा एक बहुत बड़ी उपलब्धि

रही और केवल दो दिनों में ही हमें जैनधर्म के बारे में इतनी ज्यादा जानकारी हो गई तथा हमारी दिगम्बर जैन साधुओं को देखने की अभिलाषा पूर्ण हो गई।

खजुराहो में वापस आकर, मैं और मेरे पति बहुत ही खुशी में फूलकर दूसरे विदेशियों के साथ बात करते थे। हमें लगा कि जैन साधुओं की संगति से हमें बहुत अच्छा अनुभव हुआ और हम उस जैन दम्पति के आभारी थे जिनके सहयोग से हम कुण्डलपुर जा सके। केवल जैन धर्मावलम्बी के साथ ही जैन मंदिरों में कुण्डलपुर जाया जा सकता है, ¹⁷ वहाँ जाने का दूसरा कोई विकल्प नहीं है।

मूल अंग्रेजी लेख से हिन्दी अनुवादक-

शांतिलाल जैन, पूर्व एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर

मध्यप्रदेश विद्युत मण्डल, जबलपुर,

सम्पर्क सूत्र- फ्लैट 7/3, नूपुर कुँज, ई-3,

महावीर नगर अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462 016 (म.प्र.)

फोन : 0755-4293654, मो. 094250-06804

पादटिप्पण- अनुवाद की ओर से-

1. दिगम्बर जैनाचार्य सन्तशिरोमणि 108 श्री विद्यासागर जी महाराज ससंघ।
2. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र- सिद्धक्षेत्र कुण्डलगिरि-कुण्डलपुर जी, तहसील-पटेरा, जिला दमोह, म.प्र. पिन-470773
फोन: 07605-272230, 272227।
3. खजुराहो, जिला-छतरपुर, मध्यप्रदेश पिनकोड-471606।
4. वस्तुतः कार्यक्रम एक दिवसीय ही था, जो माघ शुक्ला पूर्णिमा,

वीर निर्वाण संवत् 2532, विक्रम संवत् 2062, दिनांक 13, फरवरी, 2006 को आयोजित था।

5. कुण्डलपुर (दमोह) म.प्र. अंतिम अननुबद्ध केवली श्री श्रीधर स्वामी की निर्वाणस्थली के लिए लोकप्रसिद्ध है।
6. अट्टावन दीक्षार्थियों में से पचपन बाल ब्रह्मचारिणी बहनें थी।
7. कार्यक्रम में परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज तथा आचार्यश्री जी द्वारा दीक्षित 48 नग्न दिगम्बर जैन मुनिराज तथा 107 आर्यिका माताजी भी मंचासीन थीं।
8. तीर्थ वन्दना एवं पूजा।
9. पूजन हेतु अष्ट द्रव्य युक्त सामग्री।
10. अष्ट द्रव्य युक्त पूजन सामग्री को अर्घ्य बोलकर वेदिका पर चढ़ाते/समर्पित करते हैं।
11. प्रातः काल लगभग 8-9 बजे।
12. आर्यिका संघ।
13. 13 फरवरी को दीक्षाविधि क्रिया के दौरान ही नामकरण संस्कार किया जा चुका था। 14 फरवरी को उन नामों की सार्थक व्याख्या तथा धर्मोपदेश आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज द्वारा किया गया था।
14. साधु 28 मूलगुण/ महाव्रतों को पालन करते हैं जबकि आर्यिकाएँ यथायोग्य मूलगुणों का पालन करती हैं तथा उपचार से महाव्रती कहलाती हैं।
15. आशीर्वाद और भी अन्य तरीकों से प्राप्त किया जाता है।
16. जिन्होंने रस के रूप में दूध या दूध आदि से बने पकवानों इत्यादि का त्याग नहीं किया है, ऐसे गृहस्थ श्रावक या साधु आदि भी दूध या दूध आदि से बने पकवान आदि को ग्रहण करते हैं।
17. जैनधर्मावलम्बियों के साथ के बिना भी कुण्डलपुर जाया जा सकता है।

शाकाहारी सौ साल जिएँगे

2056 तक विज्ञान आदमी के पूरे सौ साल तक जीने के पुख्ता इंतजाम कर देगा। भविष्य का सौ वर्षीय आदमी आज के 60 वर्षीय आदमी की तरह ही चुस्त दुरुस्त होगा। न उसकी कमर झुकेगी, न दिमाग सठियाएगा और न ही उसका दिल कमजोर होगा। ये महज किसी कल्पनालोक की लंतरानियाँ नहीं हैं बल्कि वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं का यथार्थ बन चुकी उपलब्धियाँ हैं। फिलहाल स्तनधारियों के जीवन-वृत्त में चालीस फीसदी का इजाफा करने के बाद वैज्ञानिकों ने आदमी के लिए ऐसे सुरक्षा-तंत्र को विकसित करने की ठान ली है, जो पूरे सौ साल तक भीतर की टूट-फूट की अनवरत मरम्मत करने में कामयाब साबित होगा। इससे न केवल आदमी चुस्त-दुरुस्त बना रहेगा बल्कि 'डिंब' और 'गर्भाशय-ऊतकों' के प्रत्यारोपण के जरिये स्त्री की प्रजनन क्षमता को भी 60-70 साल तक बरकरार रखा जा सकेगा। यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलंबिया के प्रोफेसर डेनियल पाउली का मानना है कि हम जितना ज्यादा जीव-जंतुओं के दिमाग की भाषा पढ़ने में कामयाब हो सकेंगे, उतना ज्यादा ही हमारा मनुष्य समुदाय शाकाहार की ओर भी बढ़ता जाएगा और यह अपनी तरह की एक वैश्विक क्रांति होगी जब आदमी सौ साल जीएगा और वह भी दूसरे जीवों की हत्या किये बिना।

'कादम्बिनी' मार्च 2007 से साभार

पाखंड को प्रणाम कब तक ?

स्वामी अग्निवेश

आज चैनलों पर धर्म व अध्यात्म के नाम पर जो परोसा जा रहा है, उसमें धर्मतत्त्व कितना और किस रूप में है, उसे निष्पक्ष नजरिए से समझने की जरूरत है।

पिछले कुछ दिनों से हमारे देश में धार्मिक 'चमत्कारों' की बाढ़ सी आई है। कभी देव प्रतिमाओं के दूध पीने की खबरें आती हैं, तो कभी किसी समुद्र का पानी मीठा हो जाने का शोर मच उठता है। कभी किसी चर्च में जीसस 'प्रकट' हो जाते हैं, तो कभी किसी मस्जिद की दीवार पर अचानक कुरआन की आयतें या काबा शरीफ का अक्स उभर आता है। कभी किसी मंदिर में देव प्रतिमा की आंखों से आंसू टपकने की खबर आती है, तो किसी मंदिर में मूर्तियों के रंग बदलने की अफवाह सिर उठा लेती है। इस तरह की अंधविश्वासी घटनाओं को चमत्कार समझकर आम जनता उस पर आँख मूँदकर विश्वास कर लेती है और उसे धर्म से जोड़ दिया जाता है। हमारे समाज में ऐसे-ऐसे गुरु घंटाल हैं जो इस तरह की बेसिर-पैर की खबरों के जरिए लोगों की धार्मिक भावनाओं का शोषणकर अपना उल्लू सीधा करने में लगे रहते हैं।

कुछ दिनों पहले अखबारों में मुझे यह खबर भी पढ़ने को मिली थी कि नेपाल में वर्षा के लिए महिलाओं को नग्नकर उनसे हल चलवाया गया। हमारे देश में भी कहीं-कहीं इस तरह के प्रयास हुए हैं। यह अंधविश्वास की पराकाष्ठा है। एक और भी घटना सुनने में आई कि आगरा के पास एक गांव में वहां के कुछ लोगों ने परवीन नूरी नामक एक जवान लड़की को बंधक बनाकर यह सिद्ध करना चाहा कि यह 'देवी माँ' है, यह तपस्या करेगी तो पानी बरसेगा। उस लड़की को सात दिनों तक बांधकर भूखा-प्यासा रखा गया। बाद में पता लगाने पर पुलिस ने उसे मुक्त कराया।

दरअसल, धर्म के नाम पर सदियों से अंधविश्वास, रूढ़ियां, अनर्गल कर्मकांड, गुरुडम, जातिवाद और तमाम तरह की बुरी प्रथाएं समाज में परोसी जाती रही हैं। इससे धर्म का सही रूप जो सनातन व शाश्वत होता है, सिकुड़ता गया और धर्म संप्रदाय में बदलता चला गया। पहले जब टेक्नोलॉजी का अभाव था तो इस तरह की संकीर्णता व सांप्रदायिकता का प्रचार सीमित क्षेत्र में था। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों का विस्तार होने के बाद जैसे-जैसे धर्मगुरुओं को

टीवी के माध्यम से अपने गुरुडम का विस्तार करने के साथ-साथ अंधविश्वास, पाखंड और रूढ़ियों को फैलाने में खूब मदद मिल रही है। आज चैनलों पर धर्म व अध्यात्म के नाम पर जो परोसा जा रहा है, उसमें धर्मतत्त्व कितना और किस रूप में है, उसे निष्पक्ष नजरिए से समझने की जरूरत है।

इसे विडंबना नहीं तो और क्या कहा जाए कि एक तरफ टीवी जैसा यंत्र आधुनिक विज्ञान का प्रतीक है, तो दूसरी तरफ इसी के जरिए महाअवैज्ञानिक विचारों का संप्रेषण भी हो रहा है। ज्यादातर चैनलों की सत्य के प्रति कोई प्रतिबद्धता किसी भी स्तर पर दिखाई नहीं पड़ती है। बाजारवाद का सबसे ज्यादा असर इन पर ही दिखाई पड़ता है। यानी मुनाफा कमाना ही इनका एकमात्र मकसद रह गया है। समाज पर इसका अत्यंत प्रतिकूल असर पड़ रहा है। इससे कैसे निबटा जाए, यह सोचने की जरूरत है। आलोचना करना या निराश होकर नहीं बैठ जाना चाहिए। विज्ञान की इस उपलब्धि का सही इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है, इस पर पूरी ताकत लगाने की जरूरत है। टीवी चैनलों के जरिये समाज में फैली तमाम, बुराइयों, अंधविश्वासों और पाखंडों पर युवा मस्तिष्क सवाल उठा-उठाकर नए सिरे से आंदोलन छेड़ने की जरूरत है यानी मानस शुद्धि आंदोलन चलाने की जरूरत है। इस सिलसिले में डीडी-१ और डीडी पर प्रसारित 'मंथन' कार्यक्रम ऐसी ही पहल कही जा सकती है, जो पिछले चार महीने से जारी है। ऐसी ही पहल मंथन मित्र मंडल बनाकर गांव-गांव व कस्बे-कस्बे में की जानी चाहिए। धर्म व समाज के तमाम सवालों को उठाए बगैर न तो धर्म के सही रूप को समझा जा सकता है और न ही समाज का सुधार ही किया जा सकता है।

धर्म से ताल्लुक रखने वाले तमाम सवालों को तेजी से उठाने और स्कूल-कॉलेज एवं विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले करोड़ों युवाओं के मन-मस्तिष्क को वैचारिक क्रांति की ऊर्जा से आंदोलित व उद्वेलित करने का काम नहीं किया जाएगा, तो निठारी जैसे अमानवीय एवं पैशाचिक

कृत्यों को रोकना मुश्किल होगा। निठारी कांड की स्याही अभी सूखी भी नहीं थी कि रतलाम के मिशन हास्पिटल से मासूम बच्चों के कंकाल और बड़ी तादात में मांस के लोथड़े मिले। यह सिलसिला इसी तरह पूरे देश व दुनिया में फैलता जा रहा है और फैलता जाएगा। कोई धर्मगुरु आगे नहीं आ रहा है। ढाई सौ करोड़ रुपए से बने अक्षरधाम मंदिर से महज चार कि.मी. पर स्थित निठारी गांव में कोई धर्मगुरु या नेता संवेदना व्यक्त करने नहीं गया। ऐसे अपराधों के खिलाफ यदि कोई बोल रहा है, तो वे सामाजिक कार्यकर्ता या राजनेता हैं। तथाकथित धर्माचारियों की संवेदनाशून्यता का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि ऐसे कांडों के बाद भी वे पूर्ववत् अपने पूजा-पाठ व अजान-नमाज में लगे हैं। जैसे कहीं कुछ हुआ ही न हो।

धर्म यदि अधार्मिक कृत्यों को रोकने के लिए आगे नहीं आता, तो वह धर्म नहीं बल्कि पाखंड ही माना जाएगा। और धर्म का यह निष्क्रियरूप ही समाज को विकृत कर रहा है। धर्म की नई सामाजिक भूमिका समाजसुधार और सांस्कृतिक नवउत्थान में सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें उन सभी लोगों की भूमिका होनी चाहिए जो वाकई में विश्व

समाज को एक परिवार मानते हैं। जो चाहते हैं इंसानियत का भला और विकास हो। आज विश्व उस रूप में नहीं है जैसा कुछ दशक पहले था। इसे नजर में रखते हुए सबको साथ मिलकर काम करना होगा जो कथित धर्म के नाम पर देश-दुनिया में हिंसा, आतंकवाद, सांप्रदायिकता और जातिवाद का जहर घोल रही हैं। और उन धर्मगुरुओं को सबसे ज्यादा सोचने की जरूरत है जो धर्म के नाम पर आदर-सम्मान हासिल कर रहे हैं लेकिन समाज में बढ़ रहे अधर्म और गैरइंसानी रवायतों के खिलाफ आगे आने में झिझकते हैं। इससे असामाजिक और अमानवीय ताकतों को लगातार बढ़ावा मिल रहा है।

समाज को आज ऐसे क्रांतिकारी और चिंतनशील कर्मवीरों की जरूरत है जो पद, प्रतिष्ठा और स्वार्थ से ऊपर उठकर समाज और इंसानी तहजीब को मुसलसल रखने में यकीन करते हैं। इनसे ही बढ़ती दुष्प्रवृत्तियों और अमानवीयता पर लगाम लगाई जा सकती है। अंधविश्वास एवं तथाकथित धर्मगुरुओं के पाखंड को रोकने में तभी सफल हुआ जा सकता है।

दैनिक भास्कर, भोपाल
१४ मार्च, २००७ से साभार

सुधार का रास्ता

एक दिन आचार्य गुरुदेव से कहा- गुरुदेव कुछ लोग गलत कार्य करते हैं, उन्हें समझाते हैं फिर भी वे गलत कार्य करना नहीं छोड़ते। ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए? आचार्य गुरुदेव ने युक्तिपूर्वक समझाते हुए कहा, जिससे आप पाप छुड़वाना चाहते हो, उससे पहले मित्रतापूर्वक व्यवहार करो। फिर कहो- भैया देखो, हमें आपके ये कार्य अच्छे नहीं लगते। मैं आपसे मित्र की तरह मिलता रहता हूँ, साथ में उठना, बैठना भी होता है, आप ऐसे कार्य मत किया करो। सरलता से समझाकर ही यह कार्य हो सकता है अपनापन देकर आप मनुष्य से क्या, पशु पक्षी से भी पाप छुड़वा सकते हो, वरना नहीं। यदि हमारा उसके प्रति सद्व्यवहार न हो, तो उसको ठेस लगने से उसका सम्यग्दर्शन भी छूट सकता है। इसलिए ऐसा व्यवहार करो, जिससे अपनी दृष्टि मजबूत हो और दूसरे को भी सही दृष्टि प्राप्त हो, क्योंकि दुकान सरलता से नम्रता से ही चलती है, जोर जबरदस्ती से नहीं।

मन मंदिर में

सर्वोदय तीर्थ अमरकण्टक में नव निर्मित अष्ट धातु की आदिनाथ भगवान् की प्रतिमा जी को वेदी पर स्थापित करने के लिए ट्रक में लाया जा रहा था, वह बीच में ही रुक गया। ट्रक का आधा पहिया जमीन में धँस गया। ट्रक वहीं रुक गया, आगे नहीं बढ़ रहा था। तब आचार्यश्री ने कहा भैया! भगवान् बिना परीक्षा के वेदी पर नहीं बैठते, तो सोच लो आपके मन मंदिर में भी बिना परीक्षा के कैसे बैठेंगे?

मुनि श्री कुन्धुसागर - संकलित
'संस्मरण' से साभार

जैन महिलाओं के व्यक्तित्व का चतुर्मुखी विकास

विमला जैन

जिला एवं सत्र न्यायाधीश

भाग्योदय तीर्थ प्राकृतिक चिकित्सालय, सागर (म.प्र.) की संचालिका डॉ. रेखा जैन ने 16 फरवरी 2007 को सागर में अखिल भारतीय जैन महिला सम्मेलन आयोजित किया था। उन्होंने इस आयोजन में श्रीमती विमला जैन, जिला एवं सत्र न्यायाधीश, टीकमगढ़ को विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया था। श्रीमती जैन अपनी तात्कालिक परिस्थितियों के कारण उपस्थित नहीं हो सकीं। उनकी अनुपस्थिति में पढ़े गये उनके भाषण का सारांश यहाँ प्रस्तुत है।

संपादक

जैन समाज ज्ञान-आधारित समाज है। जैन संस्कृति के रत्नत्रय में ज्ञान को केन्द्रीय कड़ी स्वीकार किया गया है। ईसा की द्वितीय शताब्दी में आचार्य उमास्वामी द्वारा विरचित तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम सूत्र 'सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' में ज्ञान को महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की गई है। पण्डित दौलतराम जी द्वारा 300 वर्ष पूर्व रचित छहढाला की निम्नांकित पंक्तियों में, जो हमारी माताएँ बहिनें सदैव पढ़ती हैं, ज्ञान को ही सुख का अनुपम उपाय बतलाया गया है-

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन ।

यह परमामृत जन्म जरा मृत्यु रोग निवारण ॥

जैनधर्म के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव ने अपनी दोनों पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को स्वयं अध्ययन कराया था और इसतरह समाज की सभी स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा दी थी। भगवान् ऋषभदेव के स्त्रीशिक्षा-संबंधी महत्त्वपूर्ण उपदेश को आचार्य जिनसेन द्वारा रचित आदिपुराण के निम्नांकित श्लोक 16/98 में लेखबद्ध किया गया है-

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः ।

नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदम् ॥

अर्थात् लोक में विद्यावान् पुरुष, पण्डितों के द्वारा सम्मानित किया जाता है, विद्यावती नारी सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त करती है। अतः हे पुत्रियों! तुम विद्यार्जन हेतु सदा प्रयत्नशील रहो।

तीर्थंकरों एवं आचार्यों की सतत् प्रेरणा एवं उपदेश के कारण जैनश्रावकाचार में शिक्षा प्राप्ति का सर्वाधिक महत्त्व रहा है। शिक्षित और ज्ञानी महिलाओं को समाज में सदा अग्रणी और सम्माननीय स्थान प्रदान किया गया है। लौकिक शिक्षा प्राप्तकर श्रमण संस्कृति का अध्ययन करने की हमारी महिलाओं में सदैव जागरूकता एवं रुचि रही है।

नारी परिवार की आधारशीला है। वह सामाजिक रथ

का सशक्त चक्र है। पवित्र सामाजिक संस्कारों की जननी है। संस्कृति की संरक्षिणी है। पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों की सफल प्रबंधक एवं संचालक है। नारी अपने नैसर्गिक गुणों से अपने घर को स्वर्ग बनाती है। पूरे परिवार को एक सूत्र में बाँधती है। वह करुणा की जीवंत मूर्ति है। वह ममता, समता, सहिष्णुता, शांति, श्रमशीलता, सहनशीलता, सेवा और विनम्रता जैसी शुचिधाराओं का संगम है। जैन नारियों ने अपनी गौरव, गरिमा, तपस्या और त्याग की छवि सम्पूर्ण इतिहास में अंकित की है। जैन संस्कृति को अमरता प्रदान करने में जैन नारियों ने बहुमूल्य योगदान दिया है।

ज्ञान-दान श्रेष्ठतम एवं सर्वोत्कृष्ट दान है। ज्ञान से हमारे अनेक कष्टों का निदान हो जाता है। हम यह शपथ लें कि, अपने परिवार, अपने संबंधियों और अपने समाज के सदस्यों को सदैव ज्ञानदान का प्रयास करें।

यह आवश्यक है कि हमारी शिक्षित महिलाएँ आधुनिक विज्ञान और तकनीक को अपने ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले प्रत्येक परिवार तक पहुँचाएँ। प्रत्येक मंदिर और धर्मशाला में ज्ञानकेन्द्र स्थापित करें। ग्रामों में और छोटे नगरों में रहने वाले जैन परिवारों का जीवन स्तर ऊँचा उठाएँ। उन्हें इन तकनीकों से जोड़ें। जिससे वे भी हमारी प्रगतिशील समाज की मुख्यधारा में आ सकें। हमारी महिलाएँ जैन संस्कृति और जैन कला के वैज्ञानिक एवं तकनीकी पक्षों का प्रचार-प्रसार करें। जैन मान्यताओं, परम्पराओं, जैन जीवनपद्धतियों एवं पारम्परिक ज्ञान का दस्तावेजीकरण करें।

भारतीय संस्कृति माता को अनेकानेक गुरुओं से श्रेष्ठ मानती है। निम्नांकित श्लोक में कहा गया है कि दस उपाध्यायों से एक आचार्य, सौ आचार्यों से एक पिता तथा हजार पिताओं से एक माता श्रेष्ठ है।

उपाध्यायान्दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता ।

सहस्रांस्तु पितृन् माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥

परमपूज्य आचार्य विद्यासागर जी ने अपने महाकाव्य मूकमाटी में माँ का जीवंत तथा आदर्श चित्रण किया है। उन्होंने माँ को विश्व प्रसिद्ध एवं विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवादित 'माँ' उपन्यास के रचयिता गोकर्णी से भी अधिक ऊँचाई दी है। बालब्रह्मचारी दिगम्बर संत द्वारा मातृत्व के सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य का ऐसा विवेचन निश्चित ही अत्यधिक सराहनीय है-

माँ की गोद में बालक हो।

माँ उसे दूध पिला रही हो ॥

पूज्य उपाध्याय ज्ञानसागर जी ने बुन्देलखण्ड के ग्रामीण क्षेत्र की निर्धन युवा प्रतिभाओं की पहचान की। उन्होंने ऐसी प्रतिभाओं एवं उनके परिवार का विश्वास अर्जित किया और हमें ऐसी प्रतिभाओं को उच्च शिक्षा प्रदान करने का अवसर दिया। नारी शिक्षा के क्षेत्र में उनकी यह व्यावहारिक एवं प्रभावी भूमिका अत्यधिक सराहनीय और अनुकरणीय है।

इस आलेख के माध्यम से प्रत्येक छोटी बहिन, बहु एवं बेटी से मेरा विनम्र आग्रह है कि हम ज्ञान आधारित समाज के सक्रिय एवं प्रभावी अंग बनें। लगातार कुछ नया करें। सदैव रचनात्मक कार्य करें। नई परिकल्पना करें। नई खोज करें। नई परिकल्पना और नई खोज को मिलाकर कुछ नया गढ़ने का प्रयास करें। धिसे-पिटे विचारों को नया स्वरूप दें। पुराने विचारों को नए ढंग से लागू करें। अच्छे परिवर्तनों और नई प्रक्रियाओं को स्वीकार करने के लिए सदैव तत्पर रहें। प्रत्येक क्षण नई संभावना की खोज करें। अपने नजरिए में लोच रखें। अच्छी बात का आनन्द उठाएँ। भूल को सुधारें। हम किसी वस्तु या घटना को भले ही साधारण व्यक्ति की भाँति देखें, किन्तु उस पर विशिष्ट व्यक्ति की भाँति सोचें। सभी स्तरों पर निरंतर नूतन तरीका अपनाएँ। नित्य नवीन करने की ललक रखें। नई कार्य संस्कृति विकसित करें। कुशाग्रबुद्धि एवं रचनात्मक मनोवृत्ति वाले युवक-युवतियों को सामने लाएँ। उनके विचारों को, व्यावहारिक स्वरूप दें। नए विचारों की प्रतिस्पर्धा विकसित करें। ऐसी प्रतिस्पर्धा को संरक्षण और संवर्द्धन दें। नए विचार और सोच को पुरस्कृत और प्रोत्साहित करें।

आप अपने व्यक्तित्व में अच्छा नजरिया और सकारात्मक प्रवृत्ति विकसित करें। तकनीकी प्रशिक्षण के कारण केवल 15 प्रतिशत सफलता मिलती है। शेष 85 प्रतिशत सफलता अच्छे व्यक्तित्व के कारण मिलती है और

अच्छे व्यक्तित्व का मूलभूत गुण अच्छा नजरिया है। अच्छी और सकारात्मक प्रवृत्तियाँ हैं। अतः आप अच्छा नजरियाँ सीखें, अच्छी प्रवृत्तियाँ अपनाएँ। हम अपने जीवन की परिस्थितियों को तुरंत परिवर्तित नहीं कर सकते, किन्तु हम अपने व्यक्तित्व में सहजता और सरलता से सहन करने की प्रवृत्ति और शक्ति विकसित कर सकते हैं। हम देश में फैल रहे नकारात्मक वातावरण को नियंत्रित नहीं कर सकते, परन्तु हम अपने और अपने बच्चों के मस्तिष्क को अपनी इच्छानुसार नियंत्रित कर उसे सकारात्मक ढंग से विकसित कर सकते हैं।

आप सतर्क रहें। संवेदनशील बनें। सही चिंतन करें। सही चिंतन करने वाले व्यक्तियों से मिलें-जुलें। उनकी अच्छी आदतें सीखें। अच्छे कार्यों को बार-बार करके हम अच्छी प्रवृत्तियाँ और अच्छी आदतें विकसित करें। आप प्रतिदिन सही शब्द बोलें, प्रतिदिन अच्छी पुस्तकें पढ़ें, आप कभी किसी को नीचा न दिखायें। किसी की आलोचना नहीं करें। हँसी-मजाक में भी आलोचना नहीं करें। ऐसी आलोचना किसी को स्थायी चोट पहुँचा सकती है। नीचा दिखाने से किसी व्यक्ति का स्वाभिमान और आत्मविश्वास कम हो सकता है। जब कभी भी अवसर मिले, अन्य व्यक्तियों की प्रशंसा करें। अपने से छोटों को बेहतर काम करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करें। प्रोत्साहन ऑक्सीजन की भाँति उपयोगी होता है। प्रोत्साहन से व्यक्ति अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करते हैं।

अपने भीतर छुपे नेतृत्व के गुणों को उभारें। अपनी विशेष योग्यता की पहचान कर उसे विकसित करें। स्वयं को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करें।

आप सदैव यह स्मरण रखें कि विभिन्न बाहरी साधनों को अपनाकर आप अपने चेहरे की सुंदरता में थोड़ी सी ही वृद्धि कर सकती हैं परन्तु अपनी दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों को नियंत्रित कर अपने व्यक्तित्व की सुंदरता में चतुर्मुखी वृद्धि कर सकती हैं।

आप अपनी क्षमता और शक्ति का सदुपयोग करें। सर्वप्रथम आप अपने ऊपर विजय प्राप्त कीजिए। अपने जीवन में आत्म अनुशासन विकसित कीजिए। आप आज से ही आत्म अनुशासन के छोटे छोटे बिन्दु विकसित करना प्रारंभ कर दें। ताकि आप कल बड़ी सीमा तक अनुशासित हो सकें। अच्छा चरित्र हमें धीरे-धीरे बनाना पड़ता है। हम अपनी भावनाओं से नहीं, किन्तु अपने चरित्र से संचालित हो। अच्छे विचार, साहस और संकल्प से अच्छा चरित्र और

अनुशासित जीवनशैली विकसित करें।

आप समय बचाने का सदैव प्रयास करें। प्रतीक्षा के समय का सदुपयोग करें। सदैव रचनात्मक कार्य करें और समय का सार्थक उपयोग करें। बस और ट्रेन में बैठने के समय का उपयोग हलके-फुलके काम करने और पढ़ने में करें। कभी भी बस और ट्रेन में बिना पुस्तक के नहीं बैठें। जब भी ट्रैफिक में फस जायें, तो पुस्तक को बाहर निकालकर पढ़ें। विचारों को लिखने के लिए नोट पैड भी रखें। इस प्रकार आप व्यक्तिगत विकास और काम के लिए आप कुछ अतिरिक्त घण्टे हासिल कर सकते हैं। ब्रश करते समय अच्छी बातें स्मरण करें। स्नान करते समय अच्छे गीत

गुनगुनाएँ। अपनी शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति के क्षणों का निर्धारण करें। सर्वोच्च महत्त्व के कार्य इसी समय करें। स्वागत एवं सामाजिक संबंधों के लिए समय निर्धारित करें।

अंत में प्रत्येक छोटी बहिन, बेटी एवं बहू को मेरी यह विनम्र सलाह है कि अतिभोग से बचें। अतिवादी जीवन से बचकर सम्यक् जीवन, प्राचीन और अर्वाचीन श्रेष्ठ जीवन मूल्यों का व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक धरातल पर समन्वय करें और समकालीन परिस्थितियों में शाश्वत जीवन मूल्यों के संरक्षण का सार्थक प्रयास करें।

30, निशात कॉलोनी,
भोपाल, म.प्र. 462 003

‘मुक्तक-मणियाँ’

आशा

आशा ही संसार है, नर जीवन सुख मूल,
हो निराश मन मर गया, हृदय गढ़ा सा शूल।
आशा ऊर्जा-ज्योति है, तम हर, दे पुरुषार्थ,
धर्म, अर्थ, अरूकाम, शिव, आशा से परमार्थ।

प्रेम

पावन प्रेम पीयूष है, लोकालोक का सत्व,
निःस्वारथ जहाँ प्रेम हो, प्रकट होय अमरत्व।
प्रेमप्रभा प्रमुदित करे, कष्ट अशांति अतीत,
सच्चा प्रेम प्रसाद प्रभु, मिले जगत जग मीत।

विद्या

नव निधि का भण्डार है, देवे यश सम्मान,
स्व-परहित सिंचित करे, नित प्रति बढ़ती शान।
विद्या-विनयविभूषिता, कभी न हो कंगाल,
मरे, अमर, स्मृति रहे, मिटे न काल कराल।

कर्मयोग

नर त्रियोग को साधकर, कृत्य करहि सुविचार,
सन्मुख जो कर्तव्य है, प्रेयस वही सभार।
अनासक्त निष्काम कृत, कहलाता है श्रेष्ठ,
सुयश, सफल अमरत्व है, कर्मयोग जग ज्येष्ठ।

डॉ. विमला जैन 'विमल'
1/344, सुहागनगर, फिरोजाबाद

अक्षयतृतीया पर्व

सुशीला पाटनी

प्रतिवर्ष वैशाख शुल्क तृतीया को अक्षय तृतीया पर्व मानाया जाता है। यह पर्व प्राचीन है। इस दिन प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव ने निर्ग्रन्थ अवस्था में हस्तिनागपुर के राजा श्रेयांस के यहाँ आहार लिया था, तभी से उनके निमित्त से यह पर्व प्रारम्भ हुआ। भगवान् ऋषभदेव मानव संस्कृति के आदि संस्कर्ता हैं। वर्तमान अवसर्पिणी काल के तीसरे सुषमा-दुषमा नामक काल में जब चौरासी लाख पूर्व, तीन वर्ष, आठ माह, एक पक्ष बाकी रह गया था तो आषाढ़ कृष्णा द्वितीया के दिन अन्तिम कुलकर नाभिराय की पत्नी मरूदेवी के गर्भ में ऋषभ आये। नव मास के बाद चैत्रकृष्ण नवमी के दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र और ब्रह्म नामक महायोग में उनका जन्म हुआ।

एक दिन राज-सभा में देवी नीलांजना का नृत्य देखते हुए अकस्मात् उसकी आयु समाप्त हुई जानकर ऋषभदेव संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गये और लौकान्तिक देवों के द्वारा प्रस्तुत होकर देवों के द्वारा लाई हुई सुदर्शना नामक पालकी पर आरूढ़ होकर अयोध्या नगरी से बाहर कुछ दूर पर सिद्धार्थ नामक वन में पहुँचे। पंचमुष्टि केशलौच करके उन्होंने सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग कर दिया और ऊँ नमः सिद्धेभ्यः कहते हुए उन्होंने दीक्षा ले ली। वह दिन चैत्र वदी नवमी का था। छह मास मौन साधना करने के बाद वे आहार के लिए नगर और ग्रामों में विहार करने लगे। भावुक मनुष्य भगवान् के दर्शनकर भक्ति-भावना से विभोर होकर अपनी रूपवती कन्याएँ, सुन्दर वस्त्र, अमूल्य आभूषण, हाथी, घोड़े, रथ, सिंहासन आदि वस्तुएँ भेंट करने लगे। कोई भी विधिपूर्वक उन्हें आहार नहीं देता था, क्योंकि आहार देने की विधि उन्हें ज्ञात ही नहीं थी। इसप्रकार पुनः उन्होंने छह माह निराहार रहकर योग साधना की। छह माह बाद पुनः आहार के लिए हस्तिनापुर की ओर आए। दूर से ही उन्हें आता हुआ देखकर राजा श्रेयांस को अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया। इस भव से आठ भव पहले भगवान् ऋषभदेव राजा वज्रजंघ ने वन में दमधर और सागरसेन नामक मुनिराज को आहार दिया था। उस आहार-दान के प्रभाव से देवों ने पञ्चाश्चर्य किए थे।

चान्द्रीचर्या से विचरण करते हुए भगवान् ऋषभदेव के सामने आने पर दान-धर्म की विधि के ज्ञाता और उसकी स्वयं प्रवृत्ति कराने वाले श्रद्धा आदि गुणों से युक्त राजा

श्रेयांस हे भगवान्! तिष्ठ-तिष्ठ, ठहरिए-ठहरिए कहकर उन्हें घर के भीतर ले गए और उच्चासन पर विराजमानकर उनके चरण-कमल धोए, उनके चरणों की पूजा करके उन्हें मन, वचन, काय से नमस्कार किया और सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त पात्र को देने की इच्छा से उन्होंने इक्षुरस से भरा हुआ कलश उठाकर कहा कि हे प्रभो! यह इक्षुरस सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादन दोष, दश एषणा दोष तथा धूम, अगार, प्रमाण और संयोजना इन चार दाता सम्बन्धी दोषों से रहित एवं प्रासुक है, इसे ग्रहण कीजिए। अनन्तर जिनकी आत्मा विशुद्ध थी और जो पैरों को सीधाकर खड़े थे ऐसे ऋषभदेव ने क्रिया से आहार की विधि दिखाते हुए चारित्र्य की वृद्धि के लिए पारणा किया। राजा श्रेयांस ने कल्याणकारी श्री जिनेन्द्ररूपी पात्र को आहारदान दिया इसलिए पाँच प्रकार की आश्चर्यजनक विशुद्धियों से ये पञ्चाश्चर्य प्राप्त हुए- 1. रत्नवृष्टि, 2. पृष्पवृष्टि, 3. दुन्दुभि का बजना, 4. शीतल और सुगन्धित मन्द-मन्द वायु का चलना, 5. 'अहो दानम्' इत्यादि प्रशंसा वाक्य। अर्चित होने के बाद जब तीर्थंकर ऋषभदेव तप की वृद्धि के लिए वन को चले गए तब देवों ने राजा श्रेयांस की पूजा की। देवों से समीचीन दान और उसके फल की घोषणा सुनकर भरत और राजाओं ने भी आकर राजा श्रेयांस की पूजा की।

पूर्व घटना का स्मरण कर राजा श्रेयांस ने जो दानरूपी धर्म की विधि चलाई उस दान का प्रत्यक्ष फल देखनेवाले भरत आदि राजाओं ने बड़ी श्रद्धा के साथ श्रवण किया। राजा श्रेयांस ने बताया कि दान सम्बन्धी पुण्य का संग्रह करने के लिए 1. अतिथि का प्रतिग्रह (पड़गाहना), 2. उच्च स्थान पर बैठना, 3. पाद-प्रक्षालन करना, 4. दाता द्वारा अतिथि की पूजा करना, 5. नमस्कार करना, 6. मनः शुद्धि, 7. वचन शुद्धि, 8. काय शुद्धि और 9. आहार शुद्धि ये नवधा भक्ति/नौ प्रकार जानने योग्य हैं। दान देने से जो पुण्य संचित होता है वह दाता के लिए स्वर्गादि फल देकर अन्त में मोक्षफल देता है।

जिस दिन ऋषभदेव को आहार हुआ उस दिन वैशाख तृतीया थी। राजा श्रेयांस के यहाँ उस दिन रसोई गृह मे भोजन अक्षीण (जो क्षीण न हो, समाप्त न होने वाला) हो गया। अतः इसे आज भी लोग 'अक्षय तृतीया पर्व' कहते हैं। भरत क्षेत्र में इसी दिन से दान की प्रथा प्रचलित हुई। यह

पर्व जैन समाज की भाँति हिन्दू समाज में भी मनाया जाता है। बुंदेलखण्ड में यह पर्व 'अकती' के रूप में प्रसिद्ध है। ये दोनों ही शब्द अक्षयतृतीया के ही अपभ्रंश रूप हैं।

अक्षय तृतीया को लोग इतना अधिक शुभ मानते हैं कि इस दिन बिना लग्न संशोधन के भी शुभ कार्य किये जाते हैं। इस दिन प्रायः सभी शुभकार्य-नवीन मकान, दुकान या अन्य नए कार्य का मुहूर्त करने में लोग गौरव मानते हैं,

उनका विश्वास है कि इस दिन प्रारम्भ किया गया नया कार्य नियमतः सफल होता है।

जिस दिन उदयकाल में उक्त तृतीया हो उसी दिन अक्षय तृतीया का उत्सव सम्पन्न करना चाहिए। दान देना, पूजा करना, अतिथि सत्कार करना आदि विधेय कार्यों को इस तिथि में करना चाहिए।

आर.के. हाऊस, किशनगढ़ (राजस्थान)

सीखो अध्यात्म की गिनती

सुगन्धी चौधरी

इस जीव ने संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य बनकर लौकिक शिक्षा व गिनती तो सीख ली, किन्तु अध्यात्म की कल्याणकारी गिनती आज तक न सीखी। इस अध्यात्म की गिनती से संसार छूटेगा। लौकिक गिनती से संसार का काम चलेगा और इस गिनती से परलोक का काम चलेगा।

स्वयं विचार करना है। एक शब्द अपनी आत्मा व मिथ्यात्व की ओर इशारा करता है। 'एक अकेला मेरा आत्मा है जिसका आश्रय लेकर मनन-चिंतन-अनुभव करके संसार का किनारा पा सकते हैं। यदि इसका सहारा न लिया तो एक अकेला मिथ्यात्व चार गतियों, चौरासी लाख योनियों में भटकता रहा है और भटकाता रहेगा।'

दो की गिनती जीव के रागद्वेष की याद दिलाती है कि हे जीव, तू अनादि से यही करता आ रहा है। प्रिय वस्तु से राग व अप्रिय वस्तु से द्वेष। पं. प्रवर टोडरमल जी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में जीव के दुःखी होने की बात कही है कि यह जीव इष्ट वस्तुओं को रखना चाहता है और अनिष्ट वस्तुओं को हटाना चाहता है। इष्ट वस्तुयें सदा उसके साथ बनी रहें, ऐसा होना तो असंभव है। सो दुःखी होता है। यदि जीव सुखी होना चाहता है, तो यह सूत्र याद रखे कि अनादि अनिधन वस्तुयें, अपनी-अपनी सीमा में रहकर, स्वयं ही परिणामित होती हैं। इन्हें अपने अनुसार परिणामित कराने का भाव मिथ्या है।

तीन का अंक बताता है कि मन-वचन-काय की चंचलता कर्मों के आस्रव-बंध का कारण है। इन्हीं के कारण जीव तीनों लोकों में भटकता फिरता है। छहढाला में पं. प्रवर दौलतराम जी ने कहा है कि 'जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वे आस्रव भाई। आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे ॥' समयसार की ७२वीं गाथा में भी आत्मा व आस्रव में अंतर बताया है। 'आस्रव अशुचि व

आत्मस्वभाव से विपरीत है। दुःखमय व दुःख के कारण हैं और आत्मा पवित्र, सुखमय एवं सुख का कारण है।

चार का अंक कहता है- चार विकथा, चार कषाय, ये संसार के कारण हैं, तो प्रशम, संवेग, अनुकंपा व आस्तिक्य ये चार भावनाएँ सम्यग्दृष्टि को ही होती हैं। अनन्तानुबंधी आदि चार कषायें भावों की निर्मलता व आत्मपरिणामों की स्थिरता का निमित्तपाकर, क्रम से नष्ट होती जाती हैं। गुणस्थानों की वृद्धि इन्हीं कषायों के जाने से होती है।

पाँच का अंक बताता है कि पाँच पापों का त्याग करते हुए, पाँच अणुव्रत, महाव्रत व पांच ही समितियों का पालन भी क्रमशः ही होता है। छह काय के जीवों की रक्षा का भाव यदि न हो, तो वह जीव जैन नाम नहीं पाता है। आचार्यों ने पांच इन्द्रिय व मन को वश में करते हुए, १२ अविरति को भी त्यागने की बात कही है। ६ द्रव्य, ७ तत्त्वों, ९ पदार्थों व ५ अस्तिकायों में जीवराजा की ही प्रमुखता है। सात के अंक को क्यों छोड़े? ७ व्यसनो का त्यागना भी जरूरी है।

८ मूलगुणों का पालन करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्त्तव्य है। ९ देवता, ९ निधियाँ, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण ९ बलभद्र इनकी चर्चा भी प्रथमानुयोग के ग्रंथों में मिलती है। १० धर्मों के माध्यम से दशलक्षण पर्व मनाया जाता है। श्रावक की ११ प्रतिमाएँ, १२ व्रत, मुनियों का तेरह प्रकार का चारित्र, १४-१४ गुणस्थान, मार्गणा, जीवसमास भी आगम में बताये हैं। प्रमाद के १५ भेदों को भी नहीं भूलना है।

१६ कारण भावनाओं के भाने से तीर्थंकरप्रकृति का बंध होता है। १८ दोष अरहंत भगवान् के नहीं होते हैं। मुनिराज २२ परीषहों को सहन करते हुए ४६ दोषों को टालते हैं। ३२ प्रकार के अंतराय को टालते हुए आहार लेते हैं। बस इतनी ही गिनती सीखना पर्याप्त है।

दीपचंद एण्ड संस
गौरमूर्ति, सागर (म.प्र.)

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता- सौ. संगीता, नंदुरवार।

जिज्ञासा- देव तथा नारकियों में उत्पन्न होने वाले भव प्रत्यय अवधिज्ञान, भव के कारण होता है। तो फिर जन्म से क्यों नहीं होता?

समाधान- देव तथा नारकियों के पर्याप्तक हो जाने पर ही अवधिज्ञान की उत्पत्ति होती है। इसलिये जबतक वह जीव पर्याप्तक नहीं हो जाता तब तक भव प्रत्यय अवधिज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। इस सम्बन्ध में श्री धवला पुस्तक 13/290 में इस प्रकार कहा है-

जदि भवमेत्तमोहिणाणस्स कारणं होज्ज तो देवेसु णेरइएसु वा उप्पणपढमसमए ओहिणाणं किण्ण उप्पज्जदे। ण एस दोसो ओहिणाणुप्पत्तीए छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयद-मवग्गहणादो।

प्रश्न- यदि भव मात्र ही अवधिज्ञान का कारण है, तो देवों और नारकियों में उत्पन्न होने के प्रथम समय में ही अवधिज्ञान क्यों नहीं उत्पन्न होता।

उत्तर- यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि छह पर्याप्तियों से पर्याप्त भव को ही यहाँ अवधिज्ञान की उत्पत्ति का कारण माना गया है।

जिज्ञासा- अभव्य तथा भव्य को कितना अंगपूर्वरूप श्रुतज्ञान सम्भव है?

समाधान- नारकी एवं तिर्यञ्चों के किसी भी अंग या पूर्व का ज्ञान सम्भव नहीं होता है। देवों में सौधर्म इन्द्र, लौकान्तिक देव एवं सर्वार्थसिद्धि के देवों के द्वादशांग का ज्ञान पाया जाता है।

मनुष्यों में अव्रती गृहस्थों के, व्रती गृहस्थों के, क्षुल्लक व ऐलकों के तथा क्षुल्लिकाओं के किसी भी अंग या पूर्व का ज्ञान नहीं होता। शास्त्रों के अनुसार आर्यिकाओं के ग्यारह अंग तक का ज्ञान पाया जा सकता है। जैसे-सुलोचना आर्यिका को ग्यारह अंग का ज्ञान था। निर्ग्रन्थ मुनि लिंग के साथ अभव्यों को ग्यारह अंग तक का ज्ञान हो सकता है। भव्य मिथ्यादृष्टि साधुओं को ग्यारह अंग दस पूर्व तक का श्रुतज्ञान सम्भव है। दसवे पूर्व विद्यानुवाद का पाठी होने पर समस्त विद्यार्थे उनके समक्ष आकर निवेदन करती हैं कि हे मुनिराज, हम सब आपको सिद्ध हुई हैं हमें स्वीकार करें और आज्ञा प्रदान करें। यदि वे उनको स्वीकार कर लेते हैं तब वे

मिथ्यादृष्टि ही बने रहते हैं और रुद्रों की तरह पतित हो जाते हैं और यदि स्वीकार नहीं करते हैं तो नियम से सम्यक्दृष्टि भावलिङ्गी श्रमण होते हुये देवों से पूज्य एवं दस पूर्वित्व नामक बुद्धिऋद्धि के धारी हो जाते हैं। सम्यग्दृष्टि भावलिङ्गी मुनिराजों को अंग प्रविष्ट (पूर्ण द्वादशांग) तथा अंगबाह्यरूप पूर्ण श्रुतज्ञान हो सकता है अर्थात् वे श्रुतकेवली बन सकते हैं।

यद्यपि लौकान्तिक आदि देवों को द्वादशांग तक का ज्ञान होता है परन्तु वे श्रुतकेवली नहीं कहलाते। क्योंकि श्रुतकेवली पद तो उन्हीं दिग्म्बर मुनिराजों को होता है जो अंगप्रविष्ट के साथ अंगबाह्यरूप श्रुतज्ञान के भी ज्ञाता होते हैं।

प्रश्नकर्ता - नरेन्द्रकुमार शास्त्री, सागर।

जिज्ञासा - भरत, ऐरावत तथा विदेह क्षेत्र का यह नाम अनादि कालीन है या किसी कारणवश है।

समाधान- आपकी जिज्ञासा के समाधान में तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक के रचयिता आचार्य विद्यानंद महाराज ने 'भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि' इस सूत्र की टीका करते हुए इस प्रकार कहा है।

1. प्रत्येक अवसर्पिणी काल के चौथे काल के आदि में भरत नाम का पहला चक्रवर्ती इसके छह खण्डों को भोगता है इसलिये इसे भरतवर्ष कहते हैं। दूसरा सिद्धान्त उत्तर यह भी है कि जगत अनादि है, इस क्षेत्र की अनादि काल से भरत संज्ञा चली आ रही है।

2. भरत क्षेत्र के बीच में पूर्व से पश्चिम तक लम्बा जो विजयाब्द नामक पर्वत है, उसका यह सार्थक नाम इसलिये पड़ा है कि यहाँ तक चक्रवर्ती के विजय की आधी सीमा होती है। अतः इसका नाम विजयाब्द सार्थक है।

3. विदेह क्षेत्र के सम्बन्ध में लिखा है कि वहाँ सर्वदा मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति बने रहने से अनेक मनुष्य कर्म बन्ध को नष्ट कर देह रहित हो जाते हैं। अतः इसका विदेह नाम सार्थक है।

4. भरत क्षेत्र के समान ऐरावत क्षेत्र के प्रत्येक अवसर्पिणी के चतुर्थ काल का प्रथम चक्रवर्ती ऐरावत नाम वाला होता है। अतः इसी कारण इसे ऐरावत क्षेत्र कहा जाता है।

श्री राजवार्तिक में भी इसी प्रकार कथन पाया जाता है।

प्रश्नकर्ता- श्री राजीव जैन, अमर पाटन।

जिज्ञासा- क्या दिक्पालो अथवा शासन देवों को अर्घ्य चढ़ाना उचित है?

समाधान- दिगम्बर जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार पूज्यनीय तो ये नव देवता है- पांच परमेष्ठी, जिनधर्म, जिन आगम, जिनबिम्ब और जिन मंदिर। ये शासन देवता या दिक्पाल नव देवताओं में नहीं आते। ये हमारे साधर्मी अथवा क्षेत्ररक्षक हैं। इनका किसी पंचकल्याणक विधान आदि के अवसर पर जो आह्वान किया जाता है वह उनकी पूजा के लिये नहीं किया जाता, बल्कि साधर्मी के रूप में 'हमारे साथ आकर पूजा करें' इसप्रकार भक्ति के लिये आमंत्रण के रूप में किया जाता है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा आदि के प्रतिष्ठा ग्रन्थों के अनुसार जिस स्थान पर विधान आदि सम्पन्न किये जाते हैं वहाँ के शासन देव एवं क्षेत्ररक्षक दिक्पाल आदि की आज्ञा प्राप्त करना आवश्यक होता है। इसी अभिप्राय से इन देवों का आह्वान किया जाता है ताकि वे हमें विधान की निर्विघ्न शान्ति के लिये सहयोगी होते हुए उस अनुष्ठान में सम्मिलित हो। इसलिये इनका आह्वान करना तो उचित है परन्तु पूजा करना, आरती उतारना, श्रीफल चढ़ाना, पंचपरमेष्ठी की तरह ढोक देते हुए परिणाम करना या अर्घ्य आदि चढ़ाकर पूजा करना बिल्कुल उचित नहीं है।

जिज्ञासा- उदीरणा क्या सब जीवों के होती है?

समाधान - सर्वप्रथम उदय तथा उदीरणा की परिभाषा जानना आवश्यक है। पंचसंग्रह 3/3 में कहा है- भुंजणकालो उदओ, उदीरणापक्कपाचण फलं।

अर्थ- कर्मों के फल भोगने के काल को उदय कहते हैं और अपक्वकर्मों के पाचन को उदीरणा कहते हैं।

भावार्थ- जो कर्म अपने समयानुसार स्थिति पूरी होने पर फल देते हैं, उसे उदय कहते हैं। परन्तु जिनका स्थिति व अनुभाग तो ज्यादा है, परन्तु जिनको समय से पूर्व ही फल देने वाला किया जाता है, वह उदीरणा है इस संबंध में निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं-

1. कुछ अपवादों को छोड़कर प्रत्येक जीव के छोटे गुणस्थान तक, जिन कर्म प्रकृतियों का उदय होता है, उनके साथ उन्हीं कर्मों की उदीरणा भी अवश्य होती है। यह तप आदि के कारण नहीं, बल्कि स्वभाव से होती है।

2. श्री राजवार्तिक के अनुसार बाह्य तथा अभ्यंतर कारणों से, कषायों की उदीरणा होने पर अत्यन्त तीव्र परिणाम

होते हैं और उदीरणा रहित परिणाम मन्द होते हैं। जैसे- हम सुई के छिद्र में कोई डोरा पिरोयें। तो वह नहीं पिरोया जाता। पर यदि उसमें थूंक आदि कुछ लगा दें तो धागा तुरन्त पिरोने में आ जाता है।

3. जो कर्म उदयावली में प्रवेश कर चुके हैं, उनकी उदीरणा नहीं होती है। उससे अधिक समय वाली सत्ता स्थित कर्म प्रकृतियों की ही उदीरणा संभव है।

4. नारकी तथा देवों के भी नरकायु तथा देवायु की उदीरणा, मरण से एक आवली पूर्व तक होती रहती है। पर इसका अर्थ अकाल मरण नहीं लगाना चाहिये। तिर्यच तथा मनुष्यों के भी, तिर्यचायु तथा मनुष्यायु के उदय के साथ उदीरणा भी होने का नियम है।

5. सत्ता स्थित कर्मों की (जो उदयावली से बाहर हैं) तपादि क्रिया विशेष की सामर्थ्य से, उदयावली में प्रविष्ट कराके जो उदीरणा पूर्वक अनुभव किया जाता है। उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं।

उदय एवं उदीरणा किन कर्म प्रकृतियों की किस गुणस्थान तक होती है, इसके लिये सर्वार्थसिद्धि पृष्ठ 355 से 357 तक का अध्ययन करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता- मोक्षमार्ग कितने प्रकार का है। स्पष्ट करें?

समाधान- मोक्षमार्ग दो प्रकार का है जैसा कि निम्न प्रमाणों से स्पष्ट है।

निश्चय व्यवहाराभ्याम् मोक्षमार्गो द्विविधा स्थितः।

(त.सार.9/2)

अर्थ- निश्चय और व्यवहार के भेद से मोक्षमार्ग दो प्रकार का है।

दुविहं पि मोक्ख हेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।

तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥ 47 ॥ (ब्र.संग्रह)

अर्थ- दोनों ही प्रकार के मोक्षमार्गों को मुनि ध्यान में प्राप्त करते हैं। इसलिए तुम भी प्रयत्नपूर्वक ध्यान का अभ्यास करो।

सम्यग्दर्शनज्ञानचरण शिवमग सो दुविध विचारो।

जो सत्त्वारथ रूप सु निश्चय कारन सो व्यवहारो ॥

(छहढाला 3/1)

अर्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप मोक्षमार्ग दो प्रकार का कहा गया है। उनमें से जो यथार्थ स्वरूप है, वह तो निश्चय मोक्षमार्ग है और जो उसका कारण है वह व्यवहार मोक्षमार्ग है।

आचार्यों ने दोनों मोक्षमार्गों का स्वरूप लिखा है-

तथाहि वीतराग सर्वज्ञप्रणीत षड्द्रव्य पंचास्तिकाय सप्ततत्त्व नवपदार्थ सम्यग्श्रद्धानज्ञानव्रताद्यनुष्ठान विकल्परूपो व्यवहारमोक्षमार्गः। अथवा धातुपाषाणेऽग्निवत् साधको व्यवहारमोक्षमार्गः, सुवर्णस्थानीयनिर्विकारस्वोपलब्धि साध्यरूपो निश्चयमोक्षमार्गः। (बृहद्द्रव्य संग्रह39/129)

अर्थ- श्री वीतराग सर्वज्ञ के द्वारा कहे हुये जो छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व और नवपदार्थ हैं इनका भले प्रकार श्रद्धान करना, जानना और व्रत आदि का आचरण करना इत्यादि विकल्परूप जो है सो तो व्यवहार मोक्षमार्ग है और जो अपने निरंजन शुद्ध आत्मतत्त्व का सम्यग्श्रद्धान, ज्ञान और आचरण में एकाग्र परिणतिरूप है। वह निश्चय मोक्षमार्ग है अथवा साधु पाषाण के विषय में अग्नि के सदृश जो साधक है वह तो व्यवहार मोक्षमार्ग है तथा सुवर्ण स्थानापन्न निर्विकार जो निज आत्मा है, उसके स्वरूप की प्राप्ति रूप जो साध्य है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है। श्री पंचास्तिकाय में भी कहते हैं-

धम्मादी सहहणं, सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।

चिद्धा तवम्हि चरिया, ववहारो मोक्ख मग्गोत्ति ॥ 160 ॥

अर्थ- धर्मास्तिकाय आदि छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सप्ततत्त्व व नवपदार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अंग पूर्व आदि का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और तप में चेष्टा करना सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग कहा। अब निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप बताते हैं-

णिच्छयणयेण भणिदो, तिहि तेहिं समाहिदो हु जो अण्णा।

ण कुणदि किंचिवि अण्णं ण मुयदि सो मोक्ख मग्गोत्ति ॥ 161 ॥

अर्थ- जो आत्मा इन तीनों के द्वारा समाहित होता हुआ, अन्य कुछ भी न करता है और न छोड़ता है। वह आत्मा ही निश्चयनय से मोक्षमार्गी कहा गया है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि मोक्षमार्ग दो प्रकार का है। जिसमें निश्चय मोक्षमार्ग साध्य और व्यवहार मोक्षमार्ग साधन है जैसा के समयसार गाथा 236 की टीका में कहा है कि- 'अग्नि सुवर्ण पाषाणयोरिव निश्चयव्यवहारनययोः परस्पर साध्य-साधक भाव दर्शनार्थमिति।'

अर्थ- अग्नि और सुवर्ण पाषाण के समान निश्चय और व्यवहारनय में साध्य-साधन भाव दिखलाने के लिए कहा है। इनमें से पाँचवें से सातवें गुणस्थान तक साधनरूप व्यवहार मोक्षमार्ग है और सातवें से बारहवें गुणस्थान तक साध्यरूप निश्चय मोक्षमार्ग है। व्यवहार को असत्य मानने वाले कुछ लोग व्यवहार मोक्षमार्ग का लोप करके मोक्षमार्ग को एक प्रकार का निरूपण करते हैं। लेकिन उपरोक्त प्रमाणों से यह सिद्ध है कि मोक्षमार्ग को दो प्रकार ही मानना चाहिए। व्यवहार मोक्षमार्ग हेय नहीं है उपादेय ही है। जैसा कि निम्न प्रमाणों से स्पष्ट है-

'निजशुद्धात्मैव शुद्धनिश्चयेनोपादेयं भेदरत्नत्रयस्वरूपं तु उपादेयमभेदरत्नत्रय साधकत्वाद् व्यवहारेणोपादेयमिति' (समयसार 120 की तात्पर्यवृत्ति टीका)

अर्थ- शुद्ध निश्चयनय से निज शुद्धात्मा ही उपादेय है तथा भेद रत्नत्रय भी उपादेय है, क्योंकि वह अभेद रत्नत्रय का साधक है अतः वह व्यवहार से उपादेय है।

'व्यवहारमोक्षमार्गो निश्चय रत्नत्रयस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वादुपादेयः परम्परया जीवस्य पवित्रताकारणत्वात् पवित्रः।' (समयसार 161 की तात्पर्यवृत्ति टीका)।

अर्थ- उपादेयभूत जो निश्चय रत्नत्रय, उसका कारण होने से व्यवहार मोक्षमार्ग उपादेय है और परम्परा से जीव की पवित्रता का कारण होने से पवित्र है।

उपर्युक्त समस्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि मोक्षमार्ग दो प्रकार का ही है। इसलिए आगम सम्मत धारणाओं को ही स्वीकार करना चाहिए। एकान्त पक्ष में नहीं जाना चाहिए।

इस समाधान में यह भी जानने योग्य है कि ऐसी मान्यता न बना ली जाये कि मोक्ष जाने के दो मार्ग हैं अर्थात् व्यवहारमोक्षमार्ग से भी मोक्ष होता है और निश्चयमोक्षमार्ग से भी मोक्ष होता है। मोक्षमार्ग दो प्रकार का मानने का तात्पर्य यह है कि प्राथमिक अवस्था में व्यवहार मोक्षमार्ग होता है जो कि निश्चय मोक्षमार्ग का साधन है। मोक्ष की प्राप्ति तो निश्चय मोक्षमार्ग से ही होती है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

स्वभाव में जब तक न आये, विभाव का संकट रहेगा।

कर्म की प्रभुता रहेगी, आनंद घट खाली रहेगा ॥

योगेन्द्र दिवाकर, सतना म.प्र.

दान 'अहं' का

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

सेठ अमीरचन्द्र मात्र नाम से ही अमीर नहीं था बल्कि वह वैभव में भी अमीर ही था। उसकी उन चन्द लोगों में गिनती होती थी जो धन सम्पन्न थे और जिनके बारे में प्रसिद्ध था कि वे अपने घर आये किसी भी याचक को खाली हाथ नहीं जाने देते हैं। मानो दान में उनका विश्वास अटूट हो। कहते हैं अमीरी मात्र धन-दौलत से नहीं होती वह धर्म, धैर्य और दान से भी होती है। धन का दान सर्वोत्तम माना गया है। नीतिकारों ने कहा है कि धन की तीन गतियाँ होती हैं- दान, भोग और नाश। जो व्यक्ति न दान देता है, न भोग करता है उसकी धन-सम्पदा का नाश सुनिश्चित होता है। सो, अमीरचन्द्र भी इसे बखूबी समझता था इसलिए धन के नाश होने से डरता था। वह धन का भोगी अवश्य था किन्तु विलासी नहीं था। उसे कोई व्यसन भी नहीं था। यदि कोई व्यसन था तो यही कि धन आये और खूब आये। धन प्राप्ति का निमित्त कारण पुण्य होता है सो वह प्रतिदिन देवदर्शन, पूजन, पाठ आहारदानादिक जो भी उससे बनता, करता था। वह दान में पीछे रहने वालों में से भी नहीं था।

बस, उसमें कोई अच्छाई थी तो यही कि वह धार्मिक आचरण करने वाला और दानी था, किन्तु यदि कोई बुराई थी तो यही कि उसे प्रदर्शन में विश्वास अधिक था। वह किसी याचक को तब तक दान नहीं देता था जब तक कि उसे यह अहसास न हो जाये कि चार लोग उसे देख रहे हैं। यदि कोई देखने वाला नहीं तो याचक को बातों में उलझाकर रखता और यदि कोई (दर्शक) न आता दिखे तो सप्रयास बुलवा लेता। अपनी बात रखने के लिए कहता कि दान छिपकर और छिपाकर नहीं देना चाहिए। याचकों का क्या भरोसा? वह जब भी कुछ देता सबको बढ़ाचढ़ाकर बताता। प्रशंसकों को प्रेरित करता कि वे उसकी प्रशंसा करें। उन प्रशंसकों की वह खूब खातिरदारी करता और चाहता कि वे उसकी दानशीलता का गुणगान अन्यत्र भी करें। जितना दान नहीं उससे अधिक प्रशंसा प्राप्ति की भूख उसकी सदा जाग्रत रहती। यदि कोई प्रशंसा नहीं करता तो स्वयं ही कहता- "आज कल जमाना कितना बदल गया है कि कोई किसी की अच्छाई देखकर भी अपने मुख से प्रशंसा तक नहीं करना चाहता। अरे, औरों की तो जाने दो अब मुझे को देख

लो! मैंने कितना दान दिया, पर किसी ने कभी मेरे, दान की प्रशंसा तक नहीं की, सम्मान की तो बात ही अलग है?"

सुनने वाले सुनते और कहते "ऐसा नहीं है, अच्छे काम की तो सभी प्रशंसा करते हैं, फिर दान के काम को कौन बुरा कहेगा?"

खैर! एक दिन उसे पता चला कि अपने नगर में कोई साधु आये हैं, सो वह भी दर्शन हेतु चल दिया। कुछ लोगों की विशेषता होती है कि वे स्वयं को सर्वज्ञ मानकर चलते हैं। डॉक्टर के यहाँ दवा लेने जायेंगे और डॉक्टर को ही दस बीस दवाईयाँ बता आर्येंगे। यह महाशय भी गये तो थे साधु के दर्शन करने और लगे अपनी साधुता बताने। "मेरा जीवन भी साधु से कम नहीं है। अब क्या करें जिम्मेदारियाँ हैं वरना हम भी आप जैसे होते?" आदि, आदि।

साधु सब सुनते रहे। उनके मुख की रहस्यात्मक मुस्कान को उन्होंने पढ़ने की जरूरत ही नहीं समझी और रुपयों से भरी एक थैली निकालकर साधु के चरणों में रख दी और बोले-महाराज! यह आपके लिए मेरी तुच्छ भेंट है। पूरे एक लाख हैं, कहें तो राशि बढ़ा भी सकता हूँ।

साधु तो साधु थे, बोले- "मेरा इससे क्या काम? मैं तो बहता पानी, रमता जोगी की प्रकृतिवाला हूँ। मैं रुपयों को लेकर क्या करूँगा?"

यह सुन सेठ अमीरचन्द्र बोला- "महाराज! यह तो मेरा दान है?"

साधु ने कहा कि- "मैं दान क्यों लूँ? जब जरूरत होती है तो अन्न तुम्हारे जैसे श्रावकों से ही पाता हूँ और वह भी बिना किसी याचना के, बिना किसी करुणा के। और यदि मुझे कुछ जरूरत है तो मुझे तुम्हारे इस धन की नहीं तुम्हारे 'मैं' की जरूरत है।"

इधर अमीरचन्द्र का अहं जाग गया था। यह अहं वह नहीं था जो सोऽहं का भाव जागता है बल्कि यह तो वह अहं था जो आँखों, नथुनों और शरीर के रोम-रोम से प्रकट हो रहा था। अरे! यह कैसा साधु है जो मेरी दी हुई दानराशि को तो स्वीकार करता नहीं और कहता है कि मुझे तुम्हारे मैं की जरूरत है?

अमीरचन्द्र यह सब कह तो मन में रहा था, किन्तु वे साधु मन की बात समझ ही गये और बोले कि- सेठ जी लगता है तुम्हें मेरी बात का बुरा लगा है?

बुरा लगने की तो बात ही है महाराज! एक तो आप मेरा दान लेते नहीं और ऊपर से कहते हो कि मुझे तुम्हारे दान की नहीं, तुम्हारे मैं की जरूरत है? फिर मैं दान भी तो कम नहीं दे रहा हूँ, पूरे एक लाख हूँ। यह कहते हुए अमीरचन्द्र अब भी क्रोध में काँप ही रहा था। वह भी नहीं समझा पा रहा था कि उसे हो क्या गया है?

साधु को अब लगा कि चोट गहरी लगी है सेठ को, इसे सम्बोधन की आवश्यकता है। साधु ने कहा-सेठ जी! मैंने ठीक ही तो कहा था- मुझे तुम्हारे दान (धन) की जरूरत नहीं है, क्योंकि वह तो मैं पहले ही त्याग चुका हूँ। जैन साधु तो तिलतुषमात्र परिग्रह भी अपने पास नहीं रखते। मैंने जो तुम्हारा 'मैं' माँगा था वह भी इसलिए कि यदि दान भावना के पीछे और साथ में अहंकार रहा तो दान का फल तुम्हें कैसे प्राप्त होगा? दान एवं जिस दान के साथ दाता स्वयं को नहीं देता वह दान दान नहीं नादानि है। दान के लिए कहा है- "अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गोदानम्" अर्थात् स्व पर कल्याण के लिए देना दान है। यदि तुममें अहंकार रहा तो

जिसे तुमने दिया उसका भले ही कल्याण हो जाये किन्तु तुम्हारा कल्याण कैसे होगा?

दान दाता के लिए तो आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने सात गुण बताये हैं-

ऐहिकफलानपेक्षा क्षान्तिर्निष्कपटानसूयत्वम्।

अविषादित्वमुदित्वे निरहङ्कारमिति हि दातृगुणाः ॥

(पुरुषार्थसिद्धयुपाय)

अर्थात् 1. इस लोक में फल की इच्छा न करे, 2. क्षमाभाव धारण करे, 3. निष्कपट रहे, 4. दूसरे दातारों के प्रति ईर्ष्या भाव न रखे, 5. विषाद न करे कि मेरे यहाँ जो अच्छी वस्तु थी वह मैंने दे दी, मुझे नहीं देनी थी, 6. दान देकर हर्षित हो तथा 7. अहंकार नहीं करे।

सेठ जी! जो दाता इन सात गुणों के साथ दान देता है उसी का दान स्व पर कल्याणक होता है।

साधु के इस वचनों को सुनकर सेठ अमीरचन्द्र की आँखें खुल गयी थी। धन की थैली चरणों में ही पड़ी थी, किन्तु अब अहंकार का प्रतीक उन्नत सिर भी साधु के चरणों में पड़ा हुआ था। अब वह जान गया था कि दान की कीमत दान की भावना से होती है, दान के अहं से नहीं। अहं तो जितनी जल्दी विसर्जित हो जाये, उतना ही ठीक है।

लौकिक एवं पारमार्थिक शिक्षा हेतु एक सुन्दर संस्थान

हैदराबाद नगर में श्री पारसनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल संचालित

आपको सूचित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद में प्रथम बार श्री पारसनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुल की स्थापना 1 जून 2004 को की गई जो कि एक अद्वितीय कार्य हुआ है। वर्तमान में गुरुकुल में 60 छात्र अध्ययनरत हैं तथा प्रतिवर्ष 25 छात्रों को प्रवेश देने की योजना है छात्रों का चयन निम्नलिखित नियम एवं शर्तों के आधार पर किया जाता है।

नियम एवं शर्तें-

1. 10 वीं कक्षा में 70 प्रतिशत अधिक अंक होना अनिवार्य है। 2. चयन मैरिट लिस्ट के आधार पर किया जाता है। 3. प्रवेश इण्टर प्रथम वर्ष (11वीं कक्षा) के छात्रों को ही दिया जाता है। (CEC, BPC, MPC, MEC) 4. अंग्रेजी एवं हिन्दी ज्ञान अनिवार्य है। 5. धार्मिक पढ़ाई अनिवार्य है। 6. नियम एवं शर्तें पूर्णतया लागू होंगी।

व्यवस्थाएँ - छात्रों को आवास, भोजन, कॉलेज एवं धर्म की पढ़ाई आदि की पूर्ण निःशुल्क व्यवस्था।

इण्टर प्रथम वर्ष से स्नातक (डिग्री) की सम्पूर्ण पढ़ाई की सुविधा।

अंग्रेजी एवं कम्प्यूटर का ज्ञान उपलब्ध।

उद्देश्य-हमारा उद्देश्य लौकिक अध्ययन में उन्नति के साथ-साथ छात्रों को आगमानुकूल ग्रन्थों का अध्ययन कराकर संस्कारित करना एवं समाज में फैल रही कुरीतियों को दूर करने के लिए धर्म की रक्षा हेतु समर्पित एवं उपासक विद्वान् तैयारकर समाज सेवा में उपलब्ध कराना है।

यदि आप अपने पुत्र/पौत्र को गुरुकुल में प्रवेश दिलाना चाहते हो तो, शीघ्र ही एड्मिशन फॉर्म मंगाकर अपना स्थान आरक्षित करवा लें।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें-

शैलेन्द्र शास्त्री (संस्था प्रधान)

040-24651825, 94418588600

आपके पत्र

आज 'जिनभाषित' का जनवरी 2007 का अंक प्राप्त हुआ। उसमें आपका उच्चस्तरीय संपादकीय लेख पढ़ कर अतीव प्रसन्नता हुई। 'समता-निःकांक्षिता में अनुत्तीर्ण गृहस्थ मुनि-डिग्री का पात्र नहीं' इस शीर्षक से लिखा गया आपका लेख जिनवाणी के मर्म को आगम व अध्यात्म के संतुलन, सुमेल को दर्शानेवाला है। गृहस्थ को सर्वप्रथम मिथ्यात्वादि दोषों का परित्याग कर भाव से नग्न होना चाहिए- यह सम्यक्त्व से प्रकट होने वाली प्रथम प्रकार की भावनग्नता है। वस्तुतः भावनग्नता की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही गृहस्थ को मुनि की डिग्री (दि. मुनिलिंगरूप जिनदीक्षा) प्रदान की जानी चाहिये। भावपाहुड गाथा- 73, 54, 51, 152 में भावनग्नता का स्वरूप दर्शाकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने यद्यपि सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को भावश्रमण एवं परीतसंसारी कहा है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि के ही सच्ची ज्ञान-वैराग्य भावना व शक्ति प्रकट होती है, तथापि मोक्षप्राप्ति तो भावश्रमणत्व (निश्चयरत्नत्रय) एवं द्रव्यश्रमणत्व (व्यवहार रत्नत्रय) धारक साधक मुनिराज को ही होती है।

आप इसीतरह आगम अध्यात्म के आलोक में अपने उच्चस्तरीय संपादकीय लेखों द्वारा जिज्ञासु पाठकों को धर्म का मर्म (तीन भुवन में सार वीतराग-विज्ञानता) समझाते रहें, यही शुभकामना है।

ब्र. हेमचन्द्र जैन 'हेम'

कहान नगर लामरोड, देवलाली (महा.)

'जिनभाषित' के गताङ्क में प्रकाशित 'साधार है कुण्डलपुर' शीर्षक आलेख पढ़ा। कुण्डलपुर-प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के दि. 20 मई 2006 के आदेश की प्रबुद्ध लेखक श्री बंसलजी द्वारा की गई समीक्षा के अधिकांश बिन्दुओं से हम सहमत हैं। प्रसंग से हटकर प्रयुक्त किए गये कुछ वाक्यांशों को यदि छोड़ दें, तो इसे एक तटस्थ समीक्षा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, 'कुण्डलपुर कोहराम' या 'अधर में है कुण्डलपुर' शीर्षक लेखश्रृंखला की निष्पत्तियाँ काल्पनिक एवं धार्मिक सौहार्द की भावना से रहित हैं। नकारात्मक लेखन से कभी अच्छे परिणाम नहीं निकल सकते।

कोई धर्म का ज्ञाता हो या सामाजिक कार्यकर्ता, यह आवश्यक नहीं है कि वह कानून का भी विशेषज्ञ हो, परन्तु स्वयं को 'ऑलराउण्डर' सिद्ध करने के लिए कभी-कभी लोग वकीलों की तरह किसी भी प्रकरण को लम्बा खींचते हैं और यह ध्यान नहीं रखते कि तिल का ताड़ बनाने से सामाजिक एकता छिन्न-भिन्न हो सकती है। यह सही है कि इस सन्दर्भ में कुछ भूलें हुई हैं, किन्तु उनका सुधार आपसी बातचीत से किया जा सकता है, कानूनी पेंच फँसाकर नहीं।

धर्म एवं समाज के हित में कुण्डलपुर की समस्या का शीघ्र समाधान हो, सबकी यही भावना होनी चाहिए। इसी भावना से हमने अपने कुछ विनम्र सुझाव जैनगजट में प्रकाशनार्थ भेजे थे, जो दि. 24 अगस्त 2006 के अंक में छपे और कई महानुभावों ने उनकी सराहना भी की, किन्तु लेखक की ओर से दि. 28 सितम्बर के अंक में जिन शब्दों में उसका उत्तर दिया गया, उससे हमें यह लगा कि इन लोगों का उद्देश्य बातचीत के सारे दरवाजों को बन्द रखकर विवाद को जिन्दा रखने और समाधान को लटकाए रखने का है तथा इनकी भाषा स्वयंभू कमाण्डरों जैसी है, अतः हमने चुप्पी साधना ही ठीक समझा।

हमारा तो आज भी यही मत है कि चूँकि कुण्डलपुर का प्रकरण न्यायालय में विचाराधीन है, इसलिए शाब्दिक खींचातानी छोड़कर हमें धैर्यपूर्वक उसके निर्णय की प्रतीक्षा करनी चाहिए। क्या हमें न्यायपालिका पर विश्वास नहीं है? यदि ऐसा हो भी तो उचित रास्ता यही है कि हम सुनवाई के समय जज के सामने एक तीसरा पक्ष बनकर अपने विचार रखें। आरोप-प्रत्यारोपों को कागजों पर उछाल-उछालकर समाज के वातावरण को बोझिल बनाना हमें तो उचित नहीं लगता, शास्त्रार्थ-महारथियों की बात वे स्वयं जानें।

नरेन्द्र प्रकाश जैन

104, नई बस्ती, फीरोजाबाद (उ.प्र.)

समाचार

आचार्य विद्यासागर जी महाराज कुण्डलपुर में विराजमान

विश्ववंदनीय परमपूज्य संत आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ससंघ सुप्रसिद्ध सिद्धक्षेत्र/अतिशय क्षेत्र कुण्डल-गिरी, कुण्डलपुर (म.प्र.) में विराजमान हैं। आचार्यश्री के सान्निध्य में ग्रन्थराज षट्खण्डागम (धवला) भाग ४ की वाचना प्रारम्भ है। प्रति रविवार दोपहर ३ बजे से आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के मंगल प्रवचन हो रहे हैं।

कुण्डलपुर क्षेत्र कमेटी अध्यक्ष संतोष सिंघई, महामंत्री वीरेन्द्र बजाज ने श्रद्धालु भक्तगणों से कुण्डलपुर पधारकर बड़े बाबा एवं बाबा (आचार्यश्री) के दर्शनकर धर्मलाभ लेने की अपील की है।

जयकुमार जैन 'जलज'
हटा, जिला-दमोह (म.प्र.)

डॉ. श्रेयांस जैन बड़ौत सहजानंद वर्णी पुरस्कार से पुरस्कृत

अहमदाबाद (गुजरात) में दि. 11.2.07 को डॉ. शेखर जी जैन का अभिनंदन ग्रंथ समर्पण हुआ, इसी अवसर पर अ.भा.दि. जैन शास्त्री परिषद् के यशस्वी अध्यक्ष डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत को 'सहजानंद वर्णी पुरस्कार' जिसमें प्रशस्ति पत्र, साल, श्रीफल व 1100/-की नकद राशि प्रदान की गयी। यह पुरस्कार श्री हुकमचंद जी पंचरत्न के सौजन्य से सहजानंद ट्रस्ट द्वारा दिया गया।

श्री दीवान जी 'सवाई सिंघई' एवं 'प्रतिष्ठारत्न' की उपाधि से विभूषित

जैन जगत के ख्यातिलब्ध बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी वाणीभूषण प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री पवन कुमार जैन शास्त्री 'दीवान' मुरैना (म.प्र.) एवं उनके परिजनों की श्री शांतिनाथ दि. जैन अतिशय क्षेत्र सेरोन जी (ललितपुर-उ.प्र.) में उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रय गजरथ महोत्सव में एक गजरथ अपनी ओर से प्रवर्तन कराने पर 'सवाई सिंघई' की उपाधि से दि. 14/2/07 को हजारों धर्मानुरागियों की उपस्थिति में विभूषित किया गया। पगड़ी अलंकरण श्री दीवान जी के पूज्य पिताजी श्री सिंघई बाबूलाल जी को हुआ।

भवदीय
सिंघई अरिहंत जैन, मौरैना

महावीर जयंती एवं उपाध्याय श्री का 20वाँ मुनिदीक्षादिवस समारोह सम्पन्न

परम पूज्य सराकोद्धारक उपाध्याय श्री 108 ज्ञान सागर जी महाराज के ससंघ मंगल सान्निध्य में मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल स्थित मंगलवारा दिगम्बर जैन मंदिर के विशाल प्रांगण में 31/3/2007 को भगवान् महावीर जन्म जयंती समोराह एवं पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञान सागर जी महाराज का 20वाँ मुनि दीक्षा दिवस हजारों जनसमुदाय की उपस्थिति में मनाया गया। समारोह के मुख्य अतिथि म.प्र. शासन के मुख्यमंत्री श्री शिवराजसिंह चौहान थे।

ब्र. अनीता दीदी, प्रो. फूलचंद 'प्रेमी' वाराणसी, पं. निर्मल जैन, सतना, डॉ. जयेन्द्र कीर्ति आदि वक्ताओं ने भगवान् महावीर स्वामी के जीवन दर्शन पर प्रकाश डाला।

उपा. श्री ने अपनी पीयूषवाणी में उपस्थित विशाल जनसमुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा कि आत्मजयी महावीर के अहिंसा, अनेकांत, स्याद्वाद, अपरिग्रह जैसे सूत्र आज भी प्रासंगिक हैं। भगवान् महावीर ने विश्व को जीने के साथ मरण की कला सिखाई।

कृतियों का विमोचन

परमपूज्य सराकोद्धारक उपाध्याय श्री 108 ज्ञान सागर जी महाराज के ससंघ मंगल सान्निध्य में भोपाल (म.प्र.) के मंगलवारा स्थित दिगम्बर जैन मंदिर के विशाल प्रांगण में 31.3.2007 को चार कृतियों को विमोचन किया गया।

कृतियों का विमोचन मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय श्री शिवराजसिंह चौहान एवं वित्त मंत्री श्री राघवजी भाई ने अपने करकमलों से किया। विमोचित पुस्तकें हैं सराक सोपान (मासिक, संपादक श्री हंस कुमार जैन), ज्ञान महादधि (संपादक डॉ. शर्मा एवं नवनीत जैन), जिन ज्ञान (संपादक डॉ. शर्मा एवं नवनीत जैन), सराक क्षेत्र: एक दृष्टि (पं. सुनील 'संचय' नरवाँ), आओ महावीर बनें (डॉ. मूलचंद जैन) ये पुस्तकें आचार्य श्री शांति सागर छाणी स्मृति ग्रंथ माला बुढ़ाना एवं श्रुत संवर्द्धन संस्थान मेरठ से प्रकाशित हैं।

सुनील 'संचय' शास्त्री

देहली में जैन सिद्धान्त प्रशिक्षण शिविर सम्पन्न

भारत की राजधानी देहली में प्रथम बार जैन सिद्धान्त प्रशिक्षण शिविर लगाया गया। शिविर का आयोजन दि. 18/3/07 से 1/4/07 तक वीर सेवा मंदिर, दरियागंज में

किया गया। यह शिविर मुख्यरूप से युवा एवं प्रौढ़ शिविरार्थियों के लिये था शिविर का आयोजन दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर के अधिष्ठाता पं. रतनलाल जी बैनाड़ा के कुलपतित्व में हुआ। जिसमें जैन धर्म शिक्षा भाग 1-2, छहढाला तथा तत्त्वार्थसूत्र का अध्ययन कराया गया। अध्ययन करानेवाले, स्वयं बैनाड़ा जी के अलावा पं. सौरभ जी शास्त्री एवं पं. पुलक जी शास्त्री थे। शिविरार्थियों की संख्या लगभग 140 रही। सुबह तथा रात्रि में कक्षाएँ लगती थीं एवं दोपहर में 2 घंटे तत्त्वचर्चा होती थी। तत्त्वचर्चा के दौरान अनेक गूढ़ विषयों पर विस्तृत चर्चा हुई।

शिविर को संयोजन श्री किशोर जी तथा दिगम्बर जैन नैतिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष धनपाल सिंह जी जैन, महामंत्री- विमल प्रसाद जी, सुभाष जी, मदनलाल जी आदि के सहयोग से किया गया। समापन समारोह की अध्यक्षता श्री सलेखचंद जी ने की। सभी देहलीवासियों ने शिविर की बहुत-बहुत सराहना की एवं भविष्य में निरंतर इसीप्रकार शिविर लगाने का संकल्प किया।

डॉ. अशोककुमार जैन महावीर पुरस्कार 2006 से पुरस्कृत

जैन जगत् में ख्यातिलब्ध, युवामनीषी डॉ. अशोक कुमार जैन, रीडर जैन बौद्ध दर्शन विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान सङ्घाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.) को दिनांक 3 अप्रैल 2007 को महावीर जयन्ती के पावन प्रसंग पर आयोजित श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र महावीर जी में जैन विद्या संस्थान द्वारा विशाल धर्मसभा में उनकी शोधकृति 'जैनदर्शन में अनेकान्त वाद : एक परिशीलन' पर महावीर पुरस्कार 2006 से पुरस्कृत किया गया।

छात्र प्रवेश सूचना

ज्ञान भारती जैन चौरासी मथुरा का सप्तम शैक्षणिक सत्र 1 जुलाई 2007 से प्रारम्भ हो रहा है। यहाँ छात्रों को

लौकिक शिक्षा (वाणिज्य, विज्ञान, कम्प्यूटर) के साथ धार्मिक शिक्षा एवं संस्कार दिये जाते हैं।

लौकिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को आवास एवं भोजन की सुविधा निःशुल्क उपलब्ध है, जबकि धार्मिक जैन विद्वान् बनने के लिए प्रविष्ट हुए छात्रों का भोजन, आवास, वस्त्र, लेखन सामग्री, स्कूल फीस आदि की सुविधाएँ निःशुल्क उपलब्ध हैं। जिन छात्रों ने दसवीं (हाईस्कूल) की परीक्षा इस वर्ष उत्तीर्ण की है तथा प्रवेश के इच्छुक हैं, वे अपना प्रार्थना पत्र श्रमण ज्ञान भारती मथुरा के पते से मँगाकर, पासपोर्ट साइज फोटो एवं अंकतालिका 20 जून 2007 तक उपर्युक्त पते पर भेज सकते हैं।

जिन छात्रों को दसवीं कक्षा में 55 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त हुए हों, वे प्रार्थना पत्र न भेजें।

इस वर्ष मात्र 15 छात्रों को प्रवेश दिया जाना है अतः आवेदन करने में शीघ्रता करें।

निरंजनलाल बैनाड़ा
अधिष्ठाता, 9927091970,
छात्रावास 0565-2420323

छात्र प्रवेश सूचना

श्री दिगम्बर जैन संस्कृत शिक्षा समिति द्वारा संचालित श्री दिगम्बर जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय मनिहारों का रास्ता जयपुर से सम्बन्ध पं. चैनसुखदास जैन छात्रावास में वर्ष 2007-2008 के लिए प्रवेश हेतु आवेदन पत्र दिनांक 15/6/2007 तक आमन्त्रित है।

इच्छुक विद्यार्थी कक्षा आठ, दस एवं बारहवीं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने चाहिये। आवेदन प्रतिष्ठित दिगम्बर जैन व्यक्ति द्वारा प्रेषित होना चाहिए। प्रवेश दिये जाने पर निःशुल्क आवास एवं भोजन की सुविधा उपलब्ध रहेगी।

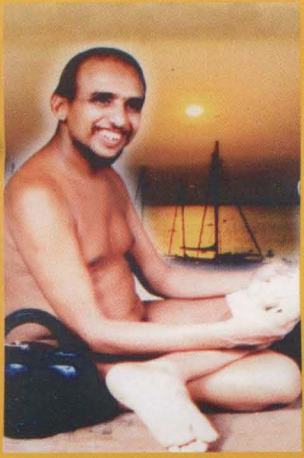
प्रकाश चन्द्र दीवान
संयोजक

आचार्य श्री विद्यासागर जी के सुभाषित

जिस प्रकार दो नेत्रों के माध्यम से मार्ग का ज्ञान होता है, उसी प्रकार निश्चय एवं व्यवहार इन दोनों नयों के माध्यम से मोक्षमार्ग का ज्ञान होता है।

जैसे दोनों कूल परस्पर प्रतिकूल होकर भी नदी के लिए अनुकूल हैं, ठीक वैसे ही व्यवहारनय और निश्चयनय एक दूसरे के प्रतिकूल होकर भी आत्मा के प्रमाणरूप ज्ञान के लिए अनुकूल हैं।

मुनिश्री समतासागर-संकलित 'सागर बूँद समाय'
से साभार



वस्तुतत्त्व समझने के लिए अध्यात्मयात्रा जरूरी

● उपाध्याय श्री ज्ञानसागर जी

दिनांक 29.3.2007,
भोपाल मंगलवारा-मंदिर
के निकट विशाल पाण्डाल
में धर्मसभा को संबोधित
करते हुये उपाध्याय श्री

है, जब व्यवहार नय का कथन चलता है तब निश्चय गौण रहता है। एक नय फूल है, तो दूसरा नय फल है। दोनों नय नदी के दो तटों के समान हैं सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर महत्त्व है। अतः विवादों से ऊपर उठकर वस्तु तत्त्व को समझना चाहिये।

ज्ञानसागर जी महाराज ने अपनी पीयूष वाणी द्वारा कहा कि वस्तु तत्त्व को समझने के लिये अध्यात्म की मात्रा जरूरी है। श्रमणों को तो आवश्यक है ही गृहस्थ को भी अध्यात्म की यात्रा जरूरी है। बाहर से अंदर जाने की प्रक्रिया का नाम अध्यात्म है। अकेलेमात्र अध्यात्म की चर्चा करने से वस्तु तत्त्व समझ में नहीं आयेगा। उसको जीवन में आचरित करना होगा।

साधना अध्यात्म की यात्रा के लिये जरूरी है। कायोत्सर्ग का अर्थ-शरीर में रहते हुये शरीर के प्रति आसक्ति नहीं होना। देह से विदेह की यात्रा, बाहर से अंदर की यात्रा, भोग से योग की यात्रा का नाम कायोत्सर्ग है। 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ लेना मात्र कायोत्सर्ग नहीं है। सहिष्णुता का विकास जिन्हें, जीवन में हो जाता है, वही कायोत्सर्ग की साधना कर सकता है।

मैं शुद्ध हूँ, मैं बुद्ध हूँ, ऐसा शब्दों से कहना सरल है, पर जब कोई गाली दे, उस समय मन में उसके प्रति प्रतिशोध की भावना न जागे, तो समझना आपने अध्यात्म को मात्र शब्दों से नहीं जाना है, उसका अनुभव भी किया है।

आज सहनशक्ति नहीं रही, जरा-जरा सी परिस्थिति में व्यक्ति असंतुलित हो फलस्वरूप आज हर व्यक्ति अशान्त है। सर्दी-गर्मी-भूख प्यास सहन नहीं होती, 10 मिनट भी अगर भोजन आने में बिलम्ब हो जाता है तो क्या होता है? आग बबूला हो जाते हो।

चारों ओर से कर्मों की छावनी आ जाने के बाद भी जो अपने धैर्य के बांध को नहीं तोड़ता वही आध्यात्मिक है। प्रतिकूलताओं के बीच रहकर भी जो मुस्कुराता रहता है, वही आध्यात्मिक है। निरंतर संवर-निर्जरा की ओर जिनके कदम बढ़ते रहते हैं, वही आध्यात्मिक है। समयसार पढ़ने के बाद भी अशुभोपयोग की मात्रा अगर आप के जीवन में चल रही है, आस्रव-बंध की प्रक्रिया चल रही है तो सोच लो अभी आपने अध्यात्म की गहराई को नहीं जाना है, अध्यात्म को जानने वाले व्यक्ति का आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है।

धन जब आप कमाते हैं, तो कितना सहन करना होता है, तब कहीं आप धनाढ्य कहलाते हैं।

एक विद्यार्थी जब परीक्षा आती है, तब रातो-रात पढ़ता है, कितना श्रम करता है, तब कहीं वह अच्छे अंकों को प्राप्त कर सकता है।

जब लौकिक क्षेत्र में बाध्य निधि को प्राप्त करने के लिये सहन शक्ति जरूरी है फिर आंतरिक संपदा को प्राप्त करने के लिये क्या सहनशक्ति जरूरी नहीं है? अवश्य है। अन्त में पूज्यश्री ने कहा कि अध्यात्म की यात्रा हेतु हर व्यक्ति को अपना मानस बनाना चाहिये, तभी बहिर्यात्रा से छुटकारा पाया जा सकता है।

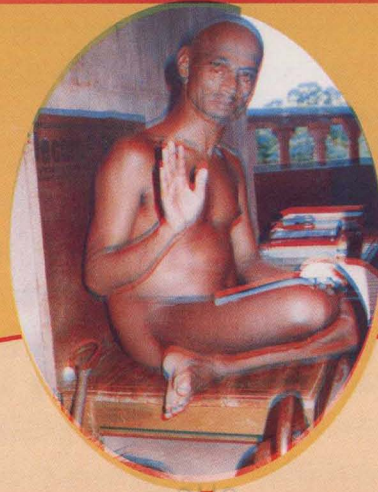
आज पक्षपात में उलझकर कषाय की ग्रंथि को मजबूत किया जा रहा है फलस्वरूप आज परस्पर में विवाद चल रहा है, किसी ने मात्र निश्चय का पक्ष पकड़ लिया है, किसी ने मात्र व्यवहार का पक्ष पकड़ लिया है। वस्तु-तत्त्व को जानने के जो साधन हैं प्रमाण और नय, उन्हें आज विवादों का कारण बना लिया है। निश्चय नय शुद्ध दशा का वर्णन करता है व्यवहार नय अशुद्ध-दशा का वर्णन करता है। जब निश्चय का कथन चलता है तब व्यवहार गौण रहता

प्रवचन के पश्चात् ब्र. अनीता दीदी के द्वारा प्रश्नमंच का आयोजन किया गया।

दोपहर में पूज्यश्री के द्वारा स्वाध्याय की शृंखला में अनेको जिज्ञासाओं का समाधान दिया गया।

शाम को 6.30 बजे से 7 बजे तक गुरुभक्ति का आयोजन किया गया। तत्पश्चात् ब्र. अनीता दीदी ने धार्मिक कक्षा द्वारा सच्चे देव शास्त्र, गुरु का लक्षण बताते हुये नमस्कार करने का उद्देश्य बताते हुये नमस्कार करने की मुद्रा का विवरण किया।

ब्र. अनीता दीदी



● मुनि श्री योगसागर जी

श्री नेमिनाथ-स्तवन

(इन्द्रवज्रा छन्द)

1

श्री नेमिनाथ वर कीर्ति वाले।
ये नील वर्णित शरीरवाले ॥
देदीप्य-माना मणि नील जैसे।
सौन्दर्य की परिपूर्णता से ॥

2

कारुण्यदायी पशु-क्रन्दनों से।
जागी अहिंसा उर स्रोत में से ॥
क्या ये सभी पाप विवाह के हैं।
क्यों भोग भोगें पर को सतारें ॥

3

संसारमाया लख के विस्क्ती।
वैराग्य-ज्योत्स्ना बहने लगी थी ॥
संसार में ना उन को सुहाये।
निर्ग्रन्थ दीक्षा मन को लुभाये ॥

4

क्या देह में ही ममता रही है।
क्या रूप मेस यह ज्ञात ना है ॥
स्वाधीनता क्या जग में हमारी।
ज्योतिर्मुखी आत्म-स्वरूप मेस ॥

5

स्वामी चले पर्वत उर्जयन्त।
साम्राज्य-सत्ता सबसे विस्कत ॥
धारे अनेकों तप त्याग ध्यान।
चैतन्य लक्ष्मी प्रगटी महान् ॥

श्री पार्श्वनाथ-स्तुति

(इन्द्रवज्रा छन्द)

1

देवाधिदेवा हे पार्श्वनाथा।
हे वीतरागी शिव विश्वनाथा ॥
अर्हत् जिनेशा शत इन्द्रवन्द्या।
हे सूर्य मेरे मम पाप संध्या ॥

2

हे विघ्नहर्ता भवरोग - वैद्य।
जो नाम जपे हर कार्य साधा ॥
सगी न द्वेषी सम भाव रूपी।
चैतन्यगुण निज आत्मरूपी ॥

3

कैवल्यज्ञानी भवदुःखमुक्ता।
निर्मोहता से वसु कर्म जीता ॥
त्रैलोक्य के सर्व पदार्थ जाने।
आत्मीय आनन्द अपूर्व पाया ॥

4

पर्याय बुद्धी भव में भ्रमाये।
तास्विक ज्ञानी भव को मिटाये ॥
यह सारपूर्णा तव देशना है।
वैराग्य को जाग्रत कराये ॥

5

योगेश का दुर्धर योग होता।
घोसतिघोस उपसर्ग जीता ॥
नागेन्द्र का आसन भी हिलाया।
ओ ही फणा मंडप को किया था ॥

प्रस्तुति - रतनचन्द्र जैन